ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 31 जनवरी 2016 — आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र — सप्ताह रविवार 31 जनवरी 2016 से 06 फरवरी 2016

मा.कृ. –07 ● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 57, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी. स्कूल हाथी गेट अमृतसर द्वारा आर्य समाज लोहगढ़ में साप्ताहिक हवन यज्ञ का सफल आयोजन

डी.ए.वी. स्कूल हाथी गेट अमृतसर इस दिशा की ओर विशेष रूप से प्रयासरत है कि अपने विद्यार्थियों को आर्य समाज के सिद्धान्तों और नियमों का ज्ञान देकर उन्हें श्रेष्ठ नागरिक बनाया जाए। साप्ताहिक हवन यज्ञ इस श्रृंखला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। आर्य समाज लोहगढ़ में डी.ए.वी.सी.सै. स्कूल हाथी गेट अमृतसर द्वारा हवन यज्ञ का आयोजन किया गया। आर्य रत्न एवं पथ प्रदर्शक श्री पूनम सूरी जी की प्रेरणा व आशीर्वाद, श्री जे पी शूर निदेशक पब्लिक एवं एडिड स्कूल के दिशा निर्देशानुसार, स्कूल के प्रिंसीपल अजय बेरी के मार्ग दर्शन एवं कुशल नेतृत्व में यह आयोजन सफल रहा। इस हवन यज्ञ में शिक्षा जगत् की महान विभूति पि. डा. राजेश कुमार मुख्य अतिथि एवं यजमान के रूप में सम्मिलित हुए। पावन मन्त्रोच्चारण के पश्चात् परम पिता परमेश्वर की स्तुति एवं धन्यवाद किया गया। स्कूल के विद्यार्थियों ने मधुर भजन गाकर सबको भाव विभोर कर दिया।

प्रिंसीपल अजय बेरी ने इस अवसर पर कहा कि डी.ए.वी.सी.सै. स्कूल हाथी गेट, अमृतसर आर्य समाज के नियमों एवं शिक्षाओं का पालन करने के लिए सदैव प्रतिबद्ध है। उन्होंने कहा कि आर्य समाज कोई सम्प्रदाय नहीं है। व्यक्ति चाहे वो किसी भी धर्म का हो आर्य बन सकता है। उन्होंने आर्य समाज के नए बने 1000 सदस्यों की सूची प्रिं डा. राजेश कुमार प्रधान, आर्य समाज लोहगढ़ को सौंपी एवं एक लाख 25 हजार का ड्राफट भेंट किया। जरुरतमंद लोगों की सहायता हेतु सिलाई मशीनें भी वितरित की गई। कार्यक्रम के पश्चात ऋषि लंगर का भी सप्रेम वितरण किया गया।

डी.ए.वी द्वारका में आर्य युवा क्लब ने उठाया नारी सशक्तिकरण का बीड़ा

डी ए वी पब्लिक स्कूल द्वारका में आर्य युवा क्लब एवं इंटरैक्ट क्लब के सौजन्य में 'उड़ान–रोज होम' की लड़कियों को कम्प्यूटर में प्रशिक्षित करने का संकल्प लिया गया। इस प्रशिक्षण के अन्तर्गत उन्हें इस घण्टे का प्रशिक्षण देने की योजना है। इस कार्य का शुभारम्भ वैदिक यज्ञ से हुआ जिसके बाद उन लड़कियों प्रशिक्षण का आरंम्भ किया गया। इस दिन को यादगार बनाने के लिए अनेक मनोरंजक खेल आयोजित किए गए। दोनों क्लब के छात्र–छात्राओं ने कार्यक्रम को सफल बनाने में बढ़–चढ़कर योगदान किया। 'रोज् होम' की लड़कियों ने इन खेलों का जी भरकर आनंद उठाया इसके बाद दोपहर के भोजन का आयोजन किया गया।

कार्यक्रम के अंत में विद्यालय की प्रधानाचार्या श्रीमती मोनिका मेहन ने प्रत्येक छात्र को उपहार में खिलौने, दवाइयाँ तथा उनके दैनिक उपयोग की वस्तुएं प्रदान कीं तथा उनको अपना प्रशिक्षण उत्साहपूर्वक पूरा करने का आशीर्वाद दिया। अपने संबोधन में उन्होंने कहा कि डी ए वी संस्था सदैव से लड़कियों की शिक्षा तथा उनको आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास करती रही है यह कार्य भी उस दिशा में उठाया गया एक कदम है हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है। उन्होंने कहा कि इस नेक कार्य में हम सबको पूर्ण सफलता मिलेगी।

आर्य युवा समाज मलोट ने आर्ष कन्या गुरुकुल में किया सहायता कार्य

डी.ए.वी. एडवर्ड गंज सी. सै. पब्लिक स्कूल, मलोट की आर्य युवा समाज शाखा द्वारा आर्ष कन्या गुरुकुल ट्रस्ट, फतूही जिला–श्री गंगानगर में रह रही लगभग 75 लड़कियों की सहायता की गई।

डी.ए.वी. कॉलेज मैनेजिंग कमेटी नई दिल्ली के प्रधान आर्य रत्न श्री पूनम सूरी के दिशा निर्देशानुसार व विद्यालय के प्राचार्य श्री जी. सी. शर्मा के निर्देशन में मुख्याध्यापिका अमरजीत कौर मक्कड़ व अध्यापकों का एक दल कन्या गुरुकुल (अनाथ आश्रम) फतूही गया व वहाँ रह रही अनाथ लड़कियों को विद्यालय व विद्यार्थियों की तरफ से 75 जोड़े जूते, लगभग 35 जोड़े सैंडिल, 400 कॉपी व लगभग 800 पैन वितरित किए तथा खाने के लिए फल प्रदान किए। आर्ष कन्या गुरुकुल (अनाथ आश्रम) फतूही में आयोजित एक कार्यक्रम में आश्रम के संचालक स्वामी सुखानन्द जी महाराज ने डी.ए.वी. मलोट का आभार प्रकट करते हुए कहा कि डी.ए.वी. मलोट समय–समय पर सहायता का प्रशंसनीय कार्य करता है। विद्यालय के प्राचार्य श्री जी.सी. शर्मा ने कहा कि अध्यापकों व बच्चों के सहयोग से हम यह सेवा का कार्य लगातार करते आ रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे। गरीबों व अनाथों की सेवा करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। इसलिए हमें ज्यादा से ज्यादा गरीबों, अनाथों व पिछड़ों की सहायता करनी चाहिए।

इस अवसर पर ओमप्रकाश कम्बोज, रामचन्द्र शास्त्री, जोगेन्द्र सिंह सोढ़ी, बिमल कान्ता, सुमन बाबा व सुनीता रानी, निशि शर्मा, काशीराम व आश्रम के समस्त अध्यापक व बच्चे उपस्थित थे।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. ७

संपादक – पूनम सूरी

आर्य जगत्

सप्ताह रविवार 31 जनवरी, 2016 से 06 फरवरी, 2016

वाणी के सलिल में स्नान

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैः, भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम्।
मा मा प्रापत् पाप्मा मौत मृत्युः , अन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः।।

अथर्व17.1.28

ऋषिः **ब्रह्मा**। देवता **आदित्यः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● **(अहं)** मैं **(ऋतेन)** सत्य से **(च)** और **(सर्वैः)** सब **(ऋतुभिः)** ऋतुओं से **(गुप्तः)** रक्षितज **[होऊँ]**, **(भूतेन)** अतीत से **(भव्येन च)** और भविष्यत् से **(गुप्तः)** रक्षित **[होऊँ]**। **(पाप्मा)** पाप **(मा)** मुझे **(मा)** मत **(प्रापत्)** प्राप्त हो, **(मा उत) न ही (मृत्युः)** मृत्यु **[प्राप्त हो]**। **(अहं)** मैं **(वाचः)** वेदवाणी के **(सलिलेन)** सलिल से, ज्ञानामृत से **(अन्तः दधे)** [स्वंय को] आच्छादित कर देता हूँ।

● मैं अ–सुरक्षा के सन्त्रास से व्याप्त इस जगत् में सर्वात्मना रक्षित रहना चाहता हूँ। पर रक्षा का उपाय क्या है? सहस्त्रों सैनिकों को अपने चारों ओर सन्नद्व करके भी मैं वैसी रक्षा प्राप्त नहीं कर सकता, जैसी स्वयं नैतिक नियमों में बंधकर तथा आत्म–बल को जगाकर पा सकता हूँ। सर्वप्रथम मैं 'सत्य' से रक्षित होऊँ। मनुष्य बहुधा अपनी रक्षा के लिए 'असत्य' का अवलम्बन करता है। वह सोचता है कि असत्य कहकर मैं अपराध के दण्ड से बच जाऊँगा। पर असत्य छिपता नहीं। अपराधी को अपराध का दण्ड तो मिलता ही है, असत्य–भाषण का अतिरिक्त दण्ड भोगना पड़ता है। इसके विपरीत सत्य बोलकर अपना अपराध स्वीकार कर लेने पर वह क्षमा का पात्र हो जाता है। मैं ऋतुओं से भी रक्षित होऊँ। ग्रीष्म, बर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर, वसन्त, छहों ऋतुएँ व्यवस्थित रूप से आकर प्रकृति के कार्य–कलाप का चारुता के साथ निर्वाह करती हैं। इन ऋतुओं से शिक्षा लेकर मैं भी अपने कार्य को यथासमय करने की आदत डालूँ, तो मैं भी रक्षित रह सकता हूँ। यदि मैं अपने राष्ट्र के उज्ज्वल अतीत से शिक्षा लेकर वर्तमान को उज्ज्वल करने का व्रत लूँ, तो अतीत भी मेरा रक्षक बन सकता है। उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करके उसे मूर्तरूप देने के प्रयास द्वारा 'भव्य' को भी मैं अपना रक्षक बना सकता हूँ।

पाप मुझे न प्राप्त हों। यदि मैं दृढ़ता धारण लूँ कि किसी भी अवस्था में पाप के वशीभूत नहीं होऊँगा, तो पाप सदा मुझसे दूर रहेगा। परिणामतः नैतिक दृष्टि से मैं सुरक्षित रहूँगा। मृत्यु भी मुझे न प्राप्त हो। यों तो जिसने जन्म लिया है वह मृत्यु से ग्रस्त होता ही है, किन्तु जब भी चाहे अकाल मृत्यु आकर हमें ग्रस ले तो हम सर्वथा असुरक्षित रहते हैं। अतः सुरक्षा के लिए अकाल मृत्यु से बचना आवश्यक है। अन्त में आत्मरक्षार्थ में वाणी के सलिल से, वेदवाणी के ज्ञानामृत से, स्वयं को अच्छादित करता हूँ। जैसे शीतल–पवित्र जल का पान और उसमें स्नान श्रम और सन्ताप को मिटाकर हमारी रक्षा करता है, वैसे ही वेदवाणी के पवित्र ज्ञान–सलिल में स्नान भी हमारे अज्ञान–मूलक दुःख–द्वन्द को हरकर हमारा रक्षक बनता है। अतः मैं वेदवाणी के निर्मल ज्ञान–सरोवर में डूबकी लगाता हूँ और सब भीतियों से रहित, सब अविद्याओं से मुक्त तथा सब कर्त्तव्य–बोधों से स्फूर्ति पाकर पूर्ण सुरक्षित हो जाता हूँ।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

प्रभु - भक्ति

● महात्मा आनन्द स्वामी

प्रभु भक्ति के आरंभ में अपने निवेदन में महात्मा आनन्द स्वामी जी ने बताया कि कौन लोग हैं जो भक्ति से वंचित रह जाते हैं। इस विषय में स्वामी जी ने अपने जीवन के आरम्भिक काल की घटना बताते हुए कहा कि वे संसार से निराश रहते थे। उनसे कोई प्रेम व्यवहार नहीं करता था। ऐसे समय में उनकी स्वामी नित्यानन्द जी से भेंट हुई। स्वामी जी ने उनके टूटे दिल को ढाढस बंधाया, उन्होंने कागज के पन्ने पर गायत्री मन्त्र लिखकर दिया और कहा कि जब घर के सब लोग सो जायें तब उठकर इस मन्त्र का जाप किया करो।

इस जाप से उन्हें शान्ति का महासागर मिल गया। इस कथा का अभिप्राय यही है कि मेरी तरह आतुर और व्याकुल हो रहे हो तो ठोकरें खाने की बजाय एक निश्चित और सफल मार्ग की ओर अग्रसर हों।

अब आगे.....

असार संसार

असार है यह संसार, और फिर यह शरीर तो सर्वथा क्षणभंगुर है। जो श्वास आता है, उसके जाते समय कोई नहीं कह सकता कि फिर यह लौटकर आयेगा या यही अन्तिम श्वास सिद्ध होगा। यजुर्वेद का स्वाध्याय करते हुए जब मैं पैंतीसवें अध्याय पर पहुँचा और इसके बाइसों मन्त्रों का पाठ किया तो मेरी आँखें खुल–सी गईं। भगवान् ने हमें इस संसार में क्यों भेजा? जीव को यहाँ आकर क्या करना चाहिए? जन्म और मृत्यु क्या है? मरकर क्या गति होती है? कुछ ऐसी समस्याएँ मेरे सामने उपस्थित हो गईं, जिन पर कभी विचार करने की आवश्यकता ही न पड़ी थी। परन्तु इस अध्ययन ने मुझे बाधित कर दिया कि मैं इन पर विचार करूँ। इसी अध्याय का चौथा मन्त्र है–

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाजऽ इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्।।

"कल–पर्यन्त संसार रहे न रहे, ऐसे अनित्य संसार में तुम लोगों की स्थिति है, और पत्ते के तुल्य चंचल शरीर में भगवान् ने तुम्हारा निवास किया है। परन्तु, तुम इन्द्रियों ही के दास हो! परमात्मा की भक्ति करो, इसी से तुम्हारा कल्याण होगा!" स्वामी दयानन्द ने इस मन्त्र का भावार्थ करते हुए लिखा है–"मनुष्यों को चाहिए कि अनित्य–शरीरों और पदार्थों को प्राप्त होके क्षणभंगुर जीवन में धर्माचरण के साथ नित्य परमात्मा की उपासना कर आत्मा और परमात्मा के संयोग से उत्पन्न हुए नित्य सुख को प्राप्त हों!"

क्या काँगड़ेवालों को ज्ञात था कि उनके लिए पाँच अप्रैल की प्रातः आयेगी या नहीं? बिहार के लोग दिन के समय अपने कामों में संलग्न थे। कोई दुकान पर बैठा था, कोई बाज़ार में जा रहा था। माँ अपने बच्चे को दूध पिला रही थी। भोले बालक आराम से खेल–कूद रहे थे। सब अपने कार्यों में मग्न थे; परन्तु तभी एक ऐसा झटका आया, जिससे सहस्त्रों मृत्यु की गोद में सो गये। विशाल अट्टालिकाएँ भूमि पर लोटने लगीं, हँसते बालक रो उठे और बाज़ारों की सफ़ाई की गई तो साइकिलों पर सवार लाशें मिलीं। उन्हें इतना भी समय न मिला कि वे साइकिलों से उतर ही सकें। सब जहाँ–के–तहाँ ही मृत्यु के ग्रास बन गये। जिन दिनों खुदाई का काम हो रहा था, उन दिनों मैं वहीं था। मेरे सामने जब एक मकान की खुदाई की गई तो दो लाशें एक–साथ निकलीं। माँ बच्चे को गोदी में लिये स्नान करा रही थी। साबुन की टिकिया उसके हाथ में थी, किन्तु जब मौत आई तो इतना भी नहीं हुआ कि साबुन ही नीचे रख सकती। ठीक तो कहा है–

क्या भरोसा है ज़िन्दगानी का, आदमी बुलबुला है पानी का।

क्या क्वेटावाले जानते थे कि उनके भाग्य में क्या लिखा है? उनतीस जुलाई की रात को कितनी उमंग, कितने उल्लास, कितनी स्कीमें और कितने ही प्रोग्राम मन में बनाकर वे सोये थे। कितनों ने पहली रात विवाह के कंगन पहने थे। कितनी ही देवियों ने विवाह की मेंहदी लगाई थी। परन्तु रात्रि के घने अन्धकार में भूकम्प के एक ही झटके ने सब आशाओं पर पानी फेर दिया। सुन्दर नगर मिट्टी का ढेर बन गया। सैकड़ों मर गये और सहस्त्रों रोने के लिए जीवित रह गये। किस बात पर मनुष्य इतना इतराता है और क्या सोचकर इस अमूल्य जीवन को व्यर्थ कामों में नष्ट करता है? अरे मन! कभी तूने इस पर विचार किया कि–

खबर नहीं घड़ी एक की, नहीं इक पल की

आस।
ना जाने इस जीव का, भोर कहाँ हो वास।।

वृक्ष के पत्ते की भाँति यह शरीर कब टूटकर गिर पड़ेगा, यह कोई नहीं कह सकता। फिर जब तक वह वृक्ष के साथ जुड़ा हुआ है, तब तक इसका सदुपयोग क्यों न कर लिया जाय? क्यों रे मन, कहो क्या इच्छा है? इस अल्प काल में, जिसमें से कितना ही समय बचपन में व्यतीत हो गया, कितना ही सोने में गुज़र गया, कितना ही रोगों और उनकी निवृत्ति में लग गया, कितना ही शरीर–रक्षा में चला गया, और कितना ही विषय–वासनाओं की पूर्ति में नष्ट हो गया, क्या करने का निश्चय है? कौन जानता है श्वास अभी समाप्त हो जाने हैं या कुछ समय पश्चात्? तू इस शेष काल को भी खो देना चाहता है या इसका अच्छा उपयोग करना चाहता है? जीवन का उद्देश्य तो तुझे भगवान् बता चुके हैं और वह है ''भक्ति'', अनित्य शरीर में रहते हुए दो नित्य ज्योतियों का मिलाप–आत्मा और परमात्मा का योग। कितने सुन्दर शब्दों में हमारे पूर्वजों ने युवकों तथा युवतियों को सावधान किया है!

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो।
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्य्यः प्रयत्नो महान्।
संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः?

"जब तक शरीर स्वस्थ है, जब तक वृद्धावस्था दूर है, जब तक इन्द्रियों की शक्ति कम नहीं हुई है, आयुष्य भी क्षीण नहीं हुआ है, तब तक बुद्धिमान् पुरुष को उचित है कि अपने कल्याण का प्रयत्न भलीभाँति करे। घर में आग लगने पर कुआँ खोदना कैसा!"

पत्थरों से भरी नदी

यजुर्वेद के पैंतीसवें अध्याय के दसवें मन्त्र में कहा गया है–

अश्मन्वती रीयते सँ रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।
अत्रा जहीमोऽशिवा ये असञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान्।।

"पत्थरों से भरी हुई संसार–रूपी यह नदी बही चली जा रही है। हे मित्रो! (इससे पार उतरने के लिए) कमर कसो, उठो और पार उतरकर ही दम लो। दुःखदायी जो बन्धन हैं, उनको यहीं छोड़कर कल्याणप्रद सच्चे बल, आत्म–बल के भरोसे इसके पार उतर चलो। कितने फिसलने पत्थर हैं इस सागर में! जरा ध्यान चूका और फिसल गये।"

भर्तृहरि इस नदी का वर्णन हुए कहते हैं–

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णा तरंगाकुला।
रागग्राहवती वितर्क–विहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी।।
मोहावर्तसुदुस्तरातिगहनो प्रोत्तुङ्गचिन्ता तटी।
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः।।

"आशा नाम की इस नदी में मनोरथ–रूपी जल भरा है। इसमें तृष्णा–रूपी लहर और राग–रूपी मगर हैं। नाना प्रकार के तर्क–वितर्क पक्षी हैं। यह नदी धैर्य–रूपी पेड़ उखाड़ देती है। मोह ही इसके कठिन भँवर हैं, और चिन्ता–रूपी इसके ऊँचे किनारे हैं। इस नदी को शुद्ध मननशील योगी ही पार कर आनन्द को प्राप्त होते हैं।"

अरे मन! इसी किनारे बैठा तू खेल खेल रहा है। सारे साथी पार जा रहे हैं। ऊपर से काली रात आ पहुँची है और तू पाप की गठरी अधिक भारी करता चला जा रहा है। भारी गठरी उठाकर कैसे पार उतर सकेगा? जिन विषयों को तू सुख और आनन्द देनेवाला समझे बैठा है, क्या यह तेरे काम आयेगा? नादान, ये तो यहीं के बखेड़े हैं। तू कुछ भी साथ नहीं ले–जा सकता। न धन, न सम्पत्ति, न कोई मोटर, न कुछ और। हाँ, जिन खेलों में तू पड़ गया है, वे तेरी पाप की गठरी को भारी अवश्य बना देंगे और जब तू इस नदी को पार करने लगेगा तो वे बाधा बनकर तुझे दुःख देंगे।

अरे मन! तू प्रतिक्षण गठरी में बोझ बढ़ाता ही चला जा रहा है। उठ, छोड़ इन खेलों को! एक–एक क्षण जो बीत रहा है, अनमोल है, फिर नहीं मिलेगा–

दूर प्यारे की पुरी है, दिन किनारे आ चुका।
चल, नहीं तो इस झमेले में पड़ा पछ्ताएगा।।

अतएव जो भी और जितना भी समय पास रह गया है, इसे अब धर्माचरण और प्रभु–भक्ति में लगाना चाहिए। एक क्षण के लिए भी मन को अब छुट्टी न दे जिससे वह हमें हमारे जीवनोद्देश्य से विमुख न होने दे।

ऋग्वेद के पहले मण्डल में 164 वें सूक्त के जो 37 वें और 38 वें मन्त्र हैं उनमें भी बड़ी सुगमता से अपने–आपको पहचानने और अनित्य शरीर से लाभ उठाने की बात कही गई है–

न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः।। (ऋ. 1–164–37)

"मैं नहीं जानता, मैं कौन वस्तु हूँ। मैं तो एक रहस्य बना हुआ हूँ, अब मन के साथ पूरा तैयार होकर चल रहा हूँ। जब ऋत (सृष्टिविज्ञान) का बड़ा भाई आत्मविज्ञान मुझे प्राप्त होगा, तभी मैं इस वाक् (वेद) का भेद पाऊँगा।"

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्य न्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्।। (ऋ.1–164–38)

"अमर आत्मा इस मरनेवाले शरीर के साथ रहता हुआ, माया के वशीभूत हुआ नीचे और ऊपर जाता है (उच्च–नीच योनियों में घूमता है)। अमर और मरनेवाला, दोनों साथ रहते हुए भी सदा भिन्न गतिवाले रहते हैं। इनमें से लोग एक को देखते हैं, दूसरे को नहीं।" इस अमर जीवात्मा और मरनेवाले शरीर का सम्बन्ध इसलिए किया गया है ताकि यह 'अमर' दूसरे महाअमर को जो आनन्दस्वरूप है, पा सके। यह शरीर प्रभु को पाने का एक साधन ही है। यदि इस साधन को साध्य समझ लिया जाय और इसीकी पूजा आरम्भ कर दी जाय तो क्या गति होगी और उस आत्मा का क्या बनेगा, जिसने हम पर भरोसा किया! इसका यह प्रयोजन नहीं कि शरीर की सर्वथा अवहेलना कर दी जाय। ऐसा नहीं! यह तो दुर्लभ है। इसी का तो ज्ञान सबसे पहले प्राप्त करना है। यही तो प्रभु–मन्दिर है। इसी की तो पूर्णरूपेण रक्षा करनी चाहिए। इसे भली प्रकार सजाना और खिलाना चाहिये। यह जितना स्वस्थ तथा पुष्ट होगा, उतना ही शीघ्र यात्री को प्रभु–दर्शन करा सकेगा। क्या टूटी मोटर मालिक को यथास्थान पहुँचा सकती है? वह तो मार्ग में ही उसे पटक देगी। क्या मरियल टट्टू सवार को घर पहुँचायेगा? नहीं, वह तो उसे भयावने जंगल ही में छोड़ देगा। सवारी अच्छी ही होनी चाहिये। इसीलिए भक्त प्रार्थना करता है–

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम।। (ऋ.10–128–1)

"हे अग्नि–स्वरूप प्रभो! जीवन के संग्रामों में मेरे अन्दर तेज और चमक हो। तुम्हारी ज्योति को जगाते हुए हम शरीर को पुष्ट करें। चारों दिशाएँ हमारे आगे झुक जायँ। आप हमारे अध्यक्ष बनें ताकि सब प्रकार के विरोधी वर्ग को हम पराजित कर सकें।"

इसलिए शरीर का स्वस्थ और पुष्ट होना नितान्त आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य भी है।

शेष अगले अंक में....

भौतिक और आत्मिक कल्याण के सात सूत्र (प्रार्थनाएँ)

● जीवन लाल आर्य

ओं अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये।।

ऋ. 10.63.12– स्वस्तिवाचनम्–18, वेदालोक I–320

अन्वय– अप अमीवाम् विश्वाम् अनाहुतिम् अप अरातिम् दुर्विदत्राम् अघायतः।
आरे देवाः द्वेषः अस्मत् युयोतन उरु शर्म यच्छता स्वस्तये।।

पदार्थ हे दिव्य शक्तियों। (**अप**) = आप (**अमीवाम्**)=हमारे सभी रोगों को हमसे दूर कीजिये, (**विश्वाम्**) = विश्व की सब (**अनाहुतिम्**) = अयज्ञीय भावना (अर्थात् ईश्वर को स्मरण न करना और उसके प्रति आभार आदि व्यक्त न करने की वृत्ति) को (**अप**) हमारे से दूर करिए (**अरातिम्**) = अर्थात् दान न देने की भावना (**दुर्विदत्राम्**) = दुर्बुद्धि–द्वेष युक्त बुद्धि और (**अघायतः**) = पाप की इच्छा करने वाले – अर्थात् दूसरे के अघ व पाप (अशुभ) की कामना करने वाले को हमसे दूर कीजिये। (**देवाः**) = हे देवो! आप (**द्वेष–अस्मत्**) = सभी द्वेष भावना को हम से (**आरे–युयोतन**) = दूर अर्थात् पृथक कीजिए। और नः = हमारे (**उरु शर्म**) = विस्तृत/व्यापक सुख को (**स्वस्ति**) = हमारे कल्याण के लिए (**यच्छतः**) = हमें प्रदान कीजिए।

प्रस्तुत मन्त्र में भौतिक और आत्मिक कल्याण हेतु सुखी रहने के सात बिन्दुओं पर चर्चा की गई है। जैसे– विविध रोग, अयज्ञीय भावना, अदान वृत्ति, दुर्बुद्धि, पापाचरण और द्वेष की भावना से सदा दूर रहने की और व्यापक/ विस्तृत सुखों की प्रार्थना की गई है। समझने के लिए मंत्र को चार भागों में विभक्त किया जाता है।

(1) ''**अपामीवामप" रोगों और आसुरी वृत्तियों से छूटने की प्रार्थना''** सु+अस्ति=स्वस्ति–जहाँ रोग का नाम ही न हो। जीवन में सब कुछ शुभ ही शुभ हो अर्थात् दुःख हो ही न। यहाँ रोगों से तात्पर्य केवल शारीरिक रोगों से ही नहीं है अपितु मानसिक और आत्मिक रोगों से भी है। सभी शारीरिक रोग समय पर न खाने, सोने आदि के कारण ही उत्पन्न होते हैं। अहंकार मनुष्य की प्रवृत्ति में आता है, और "मैं" की भावना यदि मन में बैठ जाए और उससे ऐसी मान्यता बन जाए कि 'मैं' ही हूँ जो कुछ भी हूँ, मेरी मान्यता बदल नहीं सकती, बदलना है तो दूसरे को बदलना है। ऐसी उत्पन्न भावनाएं सदा 'मानसिक और आत्मिक' रोगों से ग्रस्त रखती हैं।

स्वस्ति/कल्याण ही जीवन है। जहाँ सुविचार, सुदृष्टि, सुश्रवण, सुभक्षण, सुभाषण, सुकर्म, आदि सुसाधना है वहीं स्वस्ति है। और जहाँ इसके विपरीत–कुविचार, कुदृष्टि, कुभक्षण आदि शरीर में बस रहे हों–वहाँ रोग ही रोग होंगे, कल्याण का क्या लेना देना (यदि कल्याण है भी तो पल भर के लिए) हर कार्य को

शेष पृष्ठ 04 पर ☞

☞ पृष्ठ 03 का शेष

भौतिक और आत्मिक...

सम्पन्न करते समय जब मन में प्रभु स्मरण की भावना होगी, अर्थात् हर क्षण उस प्रभु को ध्यान में रख कर ही जीवन जीयें तो सामान्य रोग स्वतः ही कट कर दूर हो जाएंगे– यह निश्चित मानो। यदि किसी कारणवश विपरीत परिस्थिति में कोई दुःख व कष्ट आ भी जाएं तो 'सम–भावों' को रखते हुए स्वीकारें यथास्थिति को समझें और सहनशीलता बनाए रखें–दुःख स्वतः खत्म हो जाएंगे।''यही है दुःखों को सुखों में परिवर्तित करने का सुगम उपाय''।

अब प्रश्न उठता है कि सदा 'सु' अर्थात् सुख ही सुख कैसे प्राप्त होवें? देखो सुख और दुःख का चोली दामन का साथ है। न्यूनाधिक दोनों साथ–साथ ही चलते हैं। हाँ यदि हम व्यवहार में सुभावों से, सुवाणी से सुकर्मों का निरन्तर संपादन करते हुए जीयें (जीवन यापन करें) तो सच मानिए यदि कोई दुःख व कष्ट आ भी जाए तो वह भी 'सुख' में ही परिवर्तित हो जाएगा। शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान ये छः सम्पत्तियां हैं 'जीवन' की जिन्हें सांगोपांग हमें अपने जीवन में अपनाना ही होगा। सो हमें प्रभु से प्रार्थना करते वक्त अपने व्यवहार काल में सभी पुरुषार्थ सहित स्वयं से (अपने आप से) 'मैं' की भावना को खत्म करना होगा अर्थात् खुद भी जीयें और अन्यों को भी खुशी से जीने दें।

(2) **विश्वाम् अनाहुतिम्** = अर्थात् हमारी भावना अयज्ञीय न होवे–हमारे मन में आसुरी वृत्ति न हो (उस ईश्वर के प्रति हम कृतघ्न न बनें) उसका स्मरण अवश्य करें और आभार व्यक्त करना न भूलें क्योंकि जो भी आज हमें कुछ भी मिला है और मिलेगा–मिलता रहेगा, निरन्तर वह उस ईश्वर की ही देन है। सो हमें कभी भी अपने देवों को नहीं भूलना चाहिए। सबसे प्रथम देव हमारे माता व पिता हैं जिन्होंने हमें जन्म दिया। क्या माँ के उस उपकार को कभी भुलाया जा सकता है जिसने हमें 9 माह अपनी कोख में रखा और जन्म देते ही भरपूर प्यार–दुलार दिया। देखो ईश्वर की कृपा और दया को जिसने हमें शरीर के साथ 'बुद्धि और विचार शक्ति' भी प्रदान की जो सभी को नहीं केवल मानव जीवन को, और इससे हमें धन–विद्या और ज्ञान प्रदान कर हमारा कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। तो क्या हम उस ईश्वर को प्रति कृतज्ञता की भावना भी न रखें? निश्चित रूप से उसका धन्यवाद मन से अवश्य करना चाहिए।

पर यदि हम किसी कारणवश या भूलवश धन्यवाद न कर पायें/सकें तो कम से कम हम उस ईश्वर से शिकायत तो न करें कि प्रभो– तूने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया, मुझे मेरी योग्यतानुसार नहीं दिया–दूसरे को कम योग्यता पर भी दे दिया। ऐसी भावना मन में कुठाराघात की स्थिति ही उत्पन्न करती है। इस स्थिति से हमें हर हाल में बचना होगा। यह हम सभी जानते ही हैं कि ईश्वर कण–कण में व्याप्त अर्थात् सर्वव्यापक है और हमारे सभी के हर क्षण के सभी क्रिया–कलापों (जो भी क्रिया हम करते हैं) जैसा है वैसा यथावत् जानता है, और उसके आधार पर कर्म–फल की व्यवस्था करता है। है न ईश्वर सबसे बड़ा न्यायधीश–न्यायकारी जो बिना गवाह/सबूत के सब फैसले ठीक करता है। (सदा उचित फैसले) और किसी को माफ भी नही करता। हर कर्म के फल तो भोगने ही पड़ते हैं देर या सवेर इस जन्म में अन्यथा दूसरे जन्म में।

पर यदि हम किसी कारणवश या भूलवश धन्यवाद न कर पायें/सकें तो कम से कम हम उस ईश्वर से शिकायत तो न करें कि प्रभो– तूने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया, मुझे मेरी योग्यतानुसार नहीं दिया–दूसरे को कम योग्यता पर भी दे दिया। ऐसी भावना मन में कुठाराघात की स्थिति ही उत्पन्न करती है। इस स्थिति से हमें हर हाल में बचना होगा। यह हम सभी जानते ही हैं कि ईश्वर कण–कण में व्याप्त अर्थात् सर्वव्यापक है और हमारे सभी के हर क्षण के सभी क्रिया–कलापों (जो भी क्रिया हम करते हैं) जैसा है वैसा यथावत् जानता है, और उसके आधार पर कर्म–फल की व्यवस्था करता है। है न ईश्वर सबसे बड़ा न्यायधीश–न्यायकारी जो बिना गवाह/सबूत के सब फैसले ठीक करता है। (सदा उचित फैसले) और किसी को माफ भी नहीं करता। हर कर्म के फल तो भोगने ही पड़ते हैं देर या सवेर इस जन्म में अन्यथा दूसरे जन्म में।

काव्यः– हे प्रभो! सभी रोगों से हम स्वयं को बचाएँ,
सुवाणी–सुभक्षण, सुकर्मों से युक्त जीवन को कर्मशील बनाएँ।
न भूलें हम उस प्रभु को! जिसने हमें सब कुछ दिया,
त्याग आसुरी वृत्तियों को, ईश्वर के प्रति कृतज्ञता की भावना बनाएँ।।

(3)**"अपारातिं दुर्विदयाम्"**–अर्थात् "दुर्बुद्धि और अदान वृत्ति से छूटने की प्रार्थना"

(क) (**अप अरातिम्**) = देखो! देव और असुर ये दो वृत्तियाँ हैं, इन्हीं पर सब कुछ निर्भर करता है। 'देव कोटि' वाले सदा सु+अस्ति = स्वस्ति अर्थात् कल्याण का मार्ग ही चुनते हैं। दूसरे असुर वृत्ति वाले सदा विपरीत ही सोचते हैं। अदानी, दुर्बुद्धि होने से उनकी कार्यशैली से अशान्ति, अनाचार–दुराचार आदि भावना से नैतिक मूल्यों का ह्रास बढ़ता जाता है। उच्चतर स्तर का जीवन जीने वालों का भी यही हाल है। यही प्रार्थना/याचना है कि हे दाता! आप मुझे सद्बुद्धि प्रदान करो कि मैं विद्या, धन, सेवा आदि भावों को रखते हुए उसे आगे बाँटूं यह ज्ञान मुझ तक सीमित न रहे। ज्ञान, विद्या, धन, सेवा आदि सभी दान के स्वरूप हैं जैसे यज्ञ में दी गई आहुति सूक्ष्म होकर वायु में मिलकर दूर–दूर तक फैल कर वायु को शुद्ध करती है– यह है दान की भावना।

भौतिक सुख–सुविधाओं का बाहुल्य होते हुए आज हम प्रकृति का ही वरन कर रहे हैं। खाओ–पियो और मौज मस्ती करो जो पश्चिमी देशों का असर है। सामवेद मं. 3 **"ओम् अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं**। यहाँ जीव के सम्मुख दो रास्ते हैं कि वह 'प्रकृति को वर ले या प्रभु को'–प्रकृति 'प्रेय–मार्ग' का प्रतीक है और प्रभु 'श्रेय मार्ग' का। मन्दमति प्रेय–मार्ग को ही वरता है क्योंकि वह प्रकृति की हरियावल सुन्दरता से छला जाता है। परन्तु 'श्रेय–मार्ग, प्रभु को वरन् करने वाले को प्रेय मार्ग अर्थात् प्रकृति का सुख स्वतः मिल जाता है। सो याद रहे कि हमें सदा प्रभु का ही वरन् करना चहिए। **उदाहरणः** रोटी भूख को शान्त करने वाली ऐसे ही नहीं बन जाती। प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में गेहूँ का बीज किसने बोया, किसने उसे पानी से सींचा और अनाज का रूप दिया– किसने साफ–सफाई कर रोटी बनाई आदि–आदि। इन सभी की सहायता के बिना क्या रोटी हमें प्राप्त हो सकती है? सो इन सभी प्राणियों का धन्यवाद की भावना मन में अवश्य होनी चाहिए जिन्होंने हमें उस रोटी तक पहुँचाने में सहायता की है। और उस परमात्मा ने भी सूर्य के माध्यम से धूप और वर्षा बादलों आदि से सींच कर शक्ति प्रदान की, उस ईश्वर/देव का भी हम स्मरण करें। (स्मरण रखें)।

(4) **दुर्विदत्राम्** = दुर्बुद्धि–दुष्ट बुद्धि–असुर प्रवृत्ति वालों में होती है। स्वार्थ भावना के असुर वृत्ति वालों से किसी का कल्याण संभव नहीं। हाँ कुछेक को अर्थात् चन्द जनों को स्वार्थपरता का लाभ अवश्य मिल सकता है– मिल भी जाता है, अन्यथा सर्वनाश ही होता है। आज चहुँ ओर विनाश और भ्रष्टता का ही बाहुल्य है। यहाँ प्रार्थना की गई है कि है देवों/जगदीश्वर! हमसे आप समग्र स्वार्थपरता को दूर कीजिये। हम यम–नियमों पर चलते हुए सुविधानों द्वारा संकोच, संकीर्णता और स्वार्थता को अपने से अलग करके, हममें सर्वहित की दृढ़ भावना जागृत कीजिए।

दूसरों का हक छीनने की दुर्बल भावना मन में नहीं होनी चाहिए। सेवा–भाव, दीन–दलित, अपने से कमजोर, कुपोषण और अनाथ के प्रति 'सेवा की भावना' को सदा क्रियाशील और गतिशील बनाए रखें। उदाहरण के तौर पर यदि हम अपनी विवेक और बुद्धि से अधिक धन अर्जित करते हैं तो उस धन का उपयोग स्वयं तक सीमित न रखते हुए परोपकार भावना से उसे दरिद्रों में वितरित कर समाज में समता का प्रयास अवश्य करें।

काव्यः– हे नाथ! सभी अदान वृत्ति की भावना से आप हमें बचाएँ।
ले चलो हमें सदा सद्ज्ञान के रास्ते ओर दुर्बुद्धि से हमें सदा बचाएँ।।

(5) **"अघायतः आरे देवाः द्वेषः''–अर्थात् पाप और तामसी वृत्ति से बचने की प्रार्थना"**– अघ–पाप अर्थात् पाप की भावना को दूर करना। विलासमय और दुर्व्यसनों से युक्त जीवन वाले जन (व्यक्ति) असुर श्रेणी में आते हैं। विलासी जीवन रोग और स्वास्थ्य क्षीणता का सूचक है। हे देवाधि देव! आप हममें निर्व्यसन, निर्भोग, संयमी और सदाचार की भावना ही जागृत कीजिए जिससे हम कायिक, शारीरिक और मानसिक सभी रोगों से दूर रह सकें।

"अग्ने! रक्षा सो अहंसः" ऋ 7.15. 13– हे प्रभो! हमें पापों से बचा। पापों से निवृत्ति–छुटकारा पाने के लिए संध्या में तीन अघमर्षण मन्त्र (ऋ 10.190. –1 से 3) पाप आसानी से कभी नष्ट नहीं होते, इनके परिणाम तो सहने ही होंगे। यह सहन शक्ति अर्थात् सहने के बाद उनका मर्षण कर उन पापों से मुक्ति पाना ही अघमर्षण है। यानि आगे से पाप की ओर अपने 'आत्मा और मन को न जाने देना। हम आत्म निरीक्षण करें कि जहाँ–जहाँ जाने–अनजाने में हमसे भूल हुई है, उसे सुधारें। अर्थात् हमसे जो–जो पाप व अधर्म कर्म हो गए हों उनकी चोट को सहना ही पापों का मर्षण है। सो पापवृत्ति के निवारण हेतु तीन उपाय बताए हैं वेदमाता ने यहाँ। (1) सच्चे मन से मन में संकल्प करें फिर (2) धीरे–धीरे अभ्यास करते हुए उन–उन पापों पर (3) सम्पूर्ण नियन्त्रण करें और उनकी पुनरावृत्ति न होने देवें– इस वृत्ति से सदा बचें।

पापयुक्त दुर्बुद्धि में लिप्त व्यक्ति अपने अभीष्ट पूर्ति के लिए चोरी, धोखा, मिथ्यारोप, असत्य आदि का सहारा लेकर हत्या करने में भी नहीं हिचकिचाता। "हे प्रभो! आप हमारी पाप युक्त दुर्बुद्धि को दूर हटा दो और इन प्रगति के बाधक सभी पापियों को हमसे कहीं दूर ले जाओ, व इनका विनाश कर दो"।

शेष पृष्ठ 05 पर ☞

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका–जब शरीर जड़ है, तो इसकी पीड़ा हमें क्यों होती है?

समाधान–अच्छा जब आपकी कार टूटती है तो किसको पीड़ा होती है? मकान गिर जाता है, तो किसको पीड़ा होती है? आपको ही होती है न। वो जड़ है। जड़ मकान टूटने पर, जड़ कार के टूटने पर भी आपको पीड़ा होती है। इसलिये होती है क्योंकि आपका उससे कोई संबंध है। और जापान में भूकंप आये, पाकिस्तान में भूकंप आये तब पीड़ा नहीं होती क्योंकि उससे आपका संबंध नहीं है। यहाँ सवाल जड़ और चेतन का नहीं है, सवाल तो संबंध का है। जिस वस्तु से हमारा संबंध है, उस वस्तु के टूटने–फूटने, नष्ट होने पर हमको कष्ट होता है वो वस्तु चाहे जड़ हो, चाहे जो भी हो। मकान जड़ है, कार भी जड़ है, वो टूट जाते हैं तो पीड़ा होती है, क्योंकि वो हमारी कार है। ऐसे ही यह शरीर हमारा है। शरीर जड़ है, और शरीर में चोट लगती है तो हमको कष्ट होता है। कष्ट तो चेतन को ही होना है। जड़ वस्तु तो सुख–दुख को महसूस करती नहीं। चेतन हैं हम (आत्मा), इसलिए हमको ही कष्ट होता है। तो अब शरीर को जो सामान्य चोट लगती है, उतना कष्ट तो हम सहन भी कर लेंगे। पर ज्यादा गहरी चोटी लगेगी, तो उस कष्ट को रोकने का हमारा सामर्थ्य नहीं है। इसलिये हमको न चाहते हुए भी वो कष्ट भोगना पड़ता है। जैसे–सर दुख रहा है, पेट दुख रहा है, बुखार आ गया, तो उस कष्ट को हम रोक नहीं पाते, जीवात्मा में इतनी शक्ति नहीं है। इसलिये उसको भोगना पड़ता है। और फिर दवाई–चिकित्सा करते हैं तो वो रोग हट जाता है, वो कष्ट मिट जाता है। सार यह हुआ–शरीर के साथ हमारा संबंध होने के कारण हमें पीड़ा होती है।

शंका–जीवात्मा निराकार है या साकार? इस प्रश्न के उत्तर में आपने जीवात्मा को निराकार बतलाया था और कहा था कि वो चेतन है। जो चेतन होता है, वो निराकार होता है और जो जड़ होता है वो साकार होता है। अब प्रश्न बना कि ईश्वर निराकार होने से एक है, परंतु जीवात्मा निराकार होने से अनेक क्यों हैं? क्या कठोपनिषद् के आचार्य ने जीवात्मा को आकारवान माना है?

समाधान–निराकार होने से वो वस्तु एक ही होगी, ऐसा कोई नियम नहीं है, और न ही मैंने ऐसा बताया। निराकार होने से वो चेतन है, यह तो मैंने बताया था। ईश्वर निराकार है, वो चेतन है। जीवात्मा निराकार है, वो भी चेतन है। ये दोनों निराकार हैं, दोनों चेतन हैं। दूसरी बात यह है कि–निराकार वस्तु एक भी हो सकती है, अनेक भी हो सकती हैं। जीवात्मा अनेक हैं और ईश्वर एक है। ईश्वर स्वभाव से एक है और जीवात्मा स्वभाव से अनेक हैं। जिस वस्तु का जो स्वभाव होता है, उसके स्वभाव पर 'क्यों' का प्रश्न करना अनुचित है। स्वभाव है, सो है। स्वभाव का मतलब क्या हुआ? 'स्व' 'भाव', यानी उसकी ओरीजिनैलटी, वो उसका स्वभाव है। अनादिकाल से उसका वैसा ही धर्म है। जो है सो है, अब हम उसमें तोड़–मरोड़ कैसे कर सकते हैं। हमने कहा था–जो निराकार है, वो चेतन है, जिसका आकार है, वो जड़ है। बताइये नियम कहाँ टूटा। पृथ्वी जड़ है, पृथ्वी का आकार है, कहाँ नियम टूटा। वायु और आकाश भी जड़ हैं। उनका आकार भी सूक्ष्म है, हम इनको आँखों से देख नहीं सकते। वायु और आकाश तो स्थूल भूत हैं। अभी इससे छोटी सूक्ष्म चीजें और बहुत सारी हैं। मन है, इन्द्रियाँ हैं, बुद्धि है। बिल्कुल नीचे चले जाओ, सत्त्व, रज और तम नामक प्रकृति के मूल तत्त्व, वो भी साकार हैं। पर उनमें आकार सूक्ष्म है। इनको आँखों से नहीं देख सकते, माइक्रोस्कोप से भी नहीं देख सकते। फिर भी वो साकार हैं। सत्यार्थ–प्रकाश में महर्षि दयानंद जी ने लिखा है– यदि प्रकृति निराकार होती, तो उस निराकार प्रकृति से साकार जगत कैसे बनता? जगत साकार है या निराकार? साकार है न। जब साकार जगत है तो प्रकृति भी साकार होगी। जैसे गुण कारण द्रव्य में होते हैं, वैसे कार्य द्रव्य में आते हैं। यह नियम है। प्रकृति साकार है इसलिये जगत साकार है। भले ही प्रकृति का आकार सूक्ष्म है, वो हमको इन आँखों से नहीं दिखता, तो भी साकार है। आत्मा एक नहीं अनेक है, पर वो निराकार होने से चेतन है। और ईश्वर भी निराकार होने से चेतन है। सूक्ष्म शरीर जड़ है। वो निराकार नहीं है। वह साकार है। पर वो सूक्ष्म इतना है, कि हम आँख से नहीं देख पाते। जिन चीजों को हम आँख से देख नहीं पाते, उनको मोटी भाषा में निराकार वस्तुयें वो ही हैं, जो 'चेतन' वस्तुएं हैं। नहीं है। पूरी तरह निराकार वस्तुयें वो ही हैं, जो 'चेतन' वस्तुएं हैं।

प्रकृति साकार है। परन्तु जड़ होने से वह बन्धन का अनुभव नहीं करती। इसलिये प्रकृति की मुक्ति का कोई प्रश्न ही नहीं है। जीवात्मायें निराकार हैं और वे बंधन में आती रहती हैं। इसलिये उनको मुक्ति की आवश्यकता पड़ती है। ईश्वर निराकार है, परन्तु योगदर्शन व्यास–भाष्य में लिखा है, कि ईश्वर तो हमेशा से ही मुक्त है। वो बंधन में आया ही नहीं। इसलिए उसके लिये कैसे कहेंगे, कि उसको मुक्ति की आवश्यकता है। उसको आवश्यकता नहीं है, वो पहले से ही मुक्त है। अनादिकाल से मुक्त है, आज भी मुक्त है और आगे अनंतकाल तक मुक्त रहेगा। इसलिये ईश्वर को तो मुक्ति की आवश्कता नहीं है। जीवात्माओं को ही मुक्ति की आवश्यकता है, क्योंकि वो बंधन में आते रहते हैं।

दर्शन योग महाविद्यालय
रोजड़ (गुजरात)

☞ *पृष्ठ 04 का शेष*

भौतिक और आत्मिक...

(6) **आरे देवा द्वेषो**:– द्वेष भावना का प्राबल्य। तामसी प्रकृति वाले असुरों में परस्पर द्वेष भाव होता है जिससे सदा कलह, क्लेश, कटुता, अशान्ति और अन्याय का ही वातावरण बना रहता है। जहाँ ऐसा वातावरण हो तो सुख, शान्ति, मधुरता और न्याय की कामना कोसों दूर रह जाती है। अधिक धन का लालच भी द्वेष भावना को जागृत करता है। आज शिक्षा क्षेत्र में भी शिक्षा के स्थान पर 'साक्षरता' का ही बाहुल्य बढ़ता जा रहा है। द्वेष भावना के कारण ही हम आंतरिक सुख से सदा दूर हो जाते हैं। और दूसरों से घृणा व शत्रुता कर बैठते हैं। सो यही प्रार्थना है कि हे प्रभो! आप हमसे सभी द्वेषियों को दूर धकेलिए/कीजिए। द्वेषियों का वध व मारने से नहीं अपितु द्वेष भावों के निराकरण से ही द्वेषियों की परिसमाप्ति होगी।

काव्य:– पाप और तामसी वृत्ति की भावना से हम अपने को बचाएँ। न करें हम कभी भी किसी से ईर्ष्या और स्वयं को द्वेष भावनाओं से बचाएँ।।

(7) **"उरू शर्म यच्छता स्वस्तये"** "अर्थात् व्यापक विस्तृत सुखों प्रार्थना" यहाँ वेदमाता संदेश दे रही है कि हे प्रभो! "हमें व्यापक/विस्तृत सुख प्राप्त हो"। सीधी और अति सरल सी बात जो हम आज बाटेंगे वो ही हमें वापिस मिलेगा। बोएं तो बीज बबूल का तो आम कैसे मिलेगा। खुशियाँ, प्यार, विश्वास, सत्य, दान, आदि बाँटने पर वो ही हमें जिन्दगी भर मिलते रहेंगे। और इन सबके विपरीत यदि हम गालियाँ, झूठ–धोखा आदि बाँटें तो याद रहे कि समाज में हमें वो ही वापिस मिलने वाला है।

'मिलता है सच्चा सुख केवल भगवान् तेरे चरणों में' अर्थात् भगवान् ही असीम सुखों का सागर है। सारी दुनिया में सभी सुखद स्रोतों को यहीं से सब कुछ मिलता है अर्थात् सच्चा सुख भगवान् के चरणों में ही है। छान्दोपनिषद् 7.22.1 **"यो वै भूमा तत् सुखम्"** अर्थात् ईश्वर ही इस व्यापक सुख का धाम है। सो जिस दिन से हम ईश्वर को जानने का प्रयत्न करते हैं–उसी क्षण से व्यापक सुख का अनुभव प्राप्त होने लगता है।

लीक से हटकर सदा याद रहे कि ईश्वर को जानने की प्यास/जिज्ञासा और शाश्वत शान्ति की कामना उसी व्यक्ति में होती है जिसका जीवन 'योगमय' और 'यज्ञमय' हो। योगमय अर्थात् मर्यादित जीवन और यज्ञमय अर्थात सेवाभावी और परोपकारी जीवन।

विशेष:– यहाँ मन्त्र में भौतिक एवं आत्मिक सुख और कल्याण के लिए सभी पाप युक्त कर्मों और द्वेष की भावना से दूर रहने की प्रार्थना की गई है। अतः सभी वर्गों से विशेषकर विद्यार्थियों को चाहिए कि वे यम और नियमों का अनुसरण करते हुए सदा विद्या, ज्ञान पर प्राथमिकता और बल देते हुए ज्ञान व आत्मबल द्वारा आगे निरन्तर बढ़ते रहें। ष्ज्पज वित ज्ंज 'बदले की भावना' इस उम्र में ही नहीं, सभी उम्र में अधिक होती है सो इस भावना को सच्चे मन से त्यागते हुए कल्याण के मार्ग पर ही सदा आगे बढ़ते रहें।

मन्त्र का भावार्थ:– हे जगदीश्वर! आप हमें सभी रोगों से मुक्त, सुवाणी और सुभक्षण युक्त व्यवहारों द्वारा सभी आसुरी वृत्तियों को 'मन' से त्यागते हुए ज्ञान, विद्या, धन और सेवा दान आदि परोपकारी कार्यों का सम्पादन करें और हमसे स्वार्थपरता को भी दूर कीजिए। सभी पाप कर्म जो–जो जाने–अनजाने में हमसे हो गए हों, उनका हम सहर्ष मर्षण करते हुए सभी द्वेष भावनाओं का निराकरण कर आप हमें व्यापक, विस्तृत सुख प्रदान कीजिए।

काव्य:– हे नाथ! द्वेष, दुष्कर्म, लोभ और पाप, की भावना से हम स्वयं को बचाएँ।

ममता–स्नेह, शील–शुचिता के,
उजाले से हम जग में कीर्ति कमाएँ।।
यही याचना– प्रार्थना है मेरे प्रभो!
ले चलो हमें सदा सद्ज्ञान के रास्ते।
माँग रहे यही वरदान!
सदा कल्याण– सदा कल्याण।।

ओम् शम्

आर्य समाज मन्दिर
अशोक विहार–I, दिल्ली–110 052
मो. 9718965775

पिछले अंक का शेष...

वेदों में गोवध तथा गोमांस–भक्षण का सर्वथा निषेध

● डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

मध्ययुग में 'गोमेध' यज्ञ के नाम पर गोहिंसा के व्यवहार के कारणों पर प्रकाश डालते हुए पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय ने उचित ही लिखा है–"हमारी धारणा है कि 'गोमेध यज्ञ' में गौ मारकर आहुति देने या गोभक्षण करने की प्रथा–उस काल में आरम्भ हुई होगी जब वैदिक सभ्यता का ह्रास आरम्भ हो गया था। मध्यकाल अर्थात् आज से दो–ढाई हजार वर्ष पहले जब यज्ञ में पशु मारने की प्रथा चल पड़ी तो शायद गौ को अति पवित्र समझने के कारण ही (अति पवित्र कर्म यज्ञ के लिए–लेखक) इसको वध के लिए छाँट लिया गया। यह गाय के लिए तो दुर्भाग्य था ही, गोभक्त आर्य जाति के लिये भी दुर्भाग्य का कारण सिद्ध हो गया। तभी हम मध्यकालीन संस्कृत कवियों–भवभूति (उत्तररामचरितम्–चतुर्थ अङ्क) और हर्ष (नैषधीयं काव्यम् 17/177) आदि के ग्रंथों में 'गोमेध यज्ञ' की दुर्गन्ध के संकेत पाते हैं।" (सायण और दयानन्द, पृ.112–113, प्रकाशक– सत्यार्थ प्रकाशन न्यास–कुरुक्षेत्र, संस्करण–जुलाई 2008 ई.) मध्ययुगीन काव्य–नाटकादि के प्रमाणों को छोड़कर समुचित रूप में वैदिक धर्मशास्त्रीय ग्रंथों का अनुशीलन यह सिद्ध करता है कि गोसंरक्षण और गोवध निषेध भारतीय संस्कृति और इतिहास की मुख्यधारा है। ऋग्वेद में गाय को एक बार नहीं सैकड़ों बार 'अघ्न्या' कहा गया है। वह 'सहस्रधारा पयसा' सहस्र धाराओं में दूध देती है। अथर्ववेद में चेतावनी है–जहाँ गाय की हिंसा की जाती है, उस राष्ट्र का तेज शून्य हो जाता है। वहाँ वीर जन्म नहीं लेते। गाय को पीड़ित करना क्रूरता है। राजा से अनुरोध है कि गाय तिरस्कृत न की जाएँ। गाय ऋग्वेद से लेकर भारतीय संविधान तक अवध्य है। विष्णुगुप्त कौटल्य अपर नाम चाणक्य भारत के प्रतापी सम्राट् चन्द्रगुप्त का प्रधान अमात्य था। उसका लिखा 'कौटलीय अर्थशास्त्र' भारतीय राजनीतिक ग्रंथों में शीर्ष स्थानीय है। चन्द्रगुप्त का काल अंग्रेज विद्वानों के अनुसार ही ईसवी पूर्व 3 (तीसरी) शताब्दी है। आचार्य चाणक्य लिखते हैं–'वत्सो वृषो धेनुश्चैषामवध्याः' (अर्थशास्त्र–2.26.13)। अर्थात्–बछड़ा, बैल और गाय (सम्पूर्ण गोवंश) कभी न मारने चाहिए।

'स्वयं हन्ता घातयिता हर्ता हारयिता च वध्यः (अर्थशास्त्र–2.29.14) अर्थात् जो कोई स्वयं गाय आदि को मारे या किसी से मरवाने, अथवा स्वयं हरण करे या किसी से हरण करवावे, तो उसे प्राण दण्ड दिया जाए। चीनी यात्री फाह्यान ने (जिसने सन् 399 ई. से लेकर 414 ई. तक उत्तर भारत में भ्रमण किया था) अपने संस्मरणों में लिखा है–"चाण्डालों के अतिरिक्त कोई भी जीवित प्राणी का वध नहीं करता था, न मादक पेय (शराब) पीता था। वधशालायें और मदिरा की दुकानें नहीं थीं, केवल चांडालों को ही शिकार खेलने व मांस बेचने की आज्ञा थी।" (द्रष्टव्य–'भारतवर्ष का इतिहास' (द्वितीय भाग) जे.टी. हवीलर)चीनी यात्री हवेनसांग ने भी अपने संस्मरणों में सम्राट् हर्षवर्द्धन के प्रयत्नों से पशुवध तथा मांस भक्षण बन्द हो जाने का उल्लेख किया है। यहाँ तक कि बाबर ने भी हुमायूँ को गोकशी से परहेज करने का सन्देश दिया था। अकबर से औरंगजेब तक गोवध के (रोकने) निषेध का इतिहास है। उत्तर प्रदेश सरकार के नगर विकास मंत्री आजम खाँ का ताजा बयान यह आया है कि "हम खुद गोहत्या के सख्त विरोधी हैं। मुसलमान बादशाहों ने भी गोहत्या का विरोध किया था। बाबर के दौर में तो गोहत्या पर पूरी तरह प्रतिबन्ध था। बहादुरशाह जफर के जमाने में गोहत्या पर सख्त सजा का प्रावधान था। जो लोग गाय पालते हैं, हमारा उनसे कहना है कि वे गाय को बूढ़ी होने पर बाजार में न बेचें।" (दैनिक जागरण, लखनऊ–25 अक्टू 2015 ई.)।

अब प्रश्न है कि भारत के ये तथाकथित सेक्यूलरिस्ट क्या चाहते हैं? स्वतन्त्र भारत में गोवंश पर सरकार की नीति बाबर–हुमायूँ और अकबर तथा बहादुरशाह जफर की नीति को उलट कर बनायी जाए? क्या भारत को सेक्यूलर या धर्म निरपेक्ष होने के लिए गोमांस–भक्षण या गोवध का प्रावधान किया जाए? भारतीय इतिहास की परम्परा और संविधान की भावना का सम्मान करते हुए हिमाचल प्रदेश उच्च्य न्यायालय ने सम्पूर्ण भारत में गोहत्या पर रोक लगाने के लिए कानून बनाने के लिए केन्द्र सरकार को निर्देश दिया है। न्यायमूर्त्ति राजीव शर्मा व न्यायमूर्त्ति सुरेश्वर ठाकुर की खंडपीठ ने अपने निर्णय में स्पष्ट किया कि भारतीय संविधान सभी धर्मों का एक समान आदर करने की गारंटी देता है। धर्म निरपेक्षता भारतीय संविधान का मूल आधार है। किसी भी व्यक्ति को संविधान इस बात की अनुमति नहीं देता कि किसी के धर्म से जुड़ी भावनाओं को आघात पहुँचाया जाए।

न्यायालय ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 का उल्लेख करते हुए यह स्पष्ट किया कि गाय, बैल, बछड़ों के मांस का आयात व निर्यात करने की कानून अनुमति नहीं दे सकता। ('गोवध–निषेध' संविधान का अनुच्छेद–48 बना हुआ है–लेखक) न्यायालय ने केन्द्र सरकार को यह निर्देश दिया कि वह राज्य सरकार को आवारा पशुओं, गायों के रख रखाव व उनके चारे के लिए उपयुक्त धन का हस्तांतरण करे। उनके संरक्षण के लिए तीन महीनों के भीतर प्रभावी नीति बनाने के आदेश भी जारी किये गये हैं।

जहाँ तक गोमांस–भक्षण के पैरोकार वामपंथी इतिहासकार डी. एन. झा जैसों का प्रश्न है, उनसे निवेदन है पहले वे मार्क्सवादी चिन्तक डॉ. रामविलास शर्मा के ग्रंथ 'भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश' में आर्यों के भोजन का गहन विवेचन देखें और उसके खण्डन का साहस करें। "आर्यों का जीवन कृषि–प्रधान था। खेती से जौ की उपज मुख्य थी। उसी में दूध मिलाकर वे देवों को भेंट करते थे। ध्यान देने की बात यह है कि देवों को बार–बार अनाज, घी, दूध की चीजें भेंट की गई हैं। मांस का उल्लेख एक बार भी नहीं है। 'उक्षान्न', 'वशान्न' का अर्थ रस और गोदुग्ध से सिञ्चित अन्न है।" मैक्डानल और कीथ मांसभक्षी यूरोपीय विद्वान थे उन्हें मांस परक अर्थ अमीष्ट था, सो उन्होंने किया। किन्तु जिसकी पुष्टि हमारा इतिहास और संस्कृति नहीं करते, उस अश्लील, असभ्य बर्बर प्रथा वाले अर्थ को हम क्यों मानें? इन यूरोपीय विद्वानों की अपेक्षा दयानन्द सरस्वती तथा पं. सातव लेकर जी का वेदों का अध्ययन अधिक गम्भीर था। डॉ. रामविलास जी ने सातवलेकर जी के अर्थ को सही ठहराया है। साथ ही यह भी विचारणीय है कि जब आर्य गोमांस भक्षक थे तो उनके वंशज हिन्दू गौमांस के जबर्दश्त विरोधी कैसे हो गये। आज भी हिन्दुओं के साधु–सन्त–धर्माचार्य, जैन. आर्यसमाज, सिक्ख, आदि धार्मिक संस्थाओं के प्रमुख व्यक्ति तथा सामान्य हिन्दू जनता गोमांस का नाम सुनते ही क्यों भड़क जाती है? इसे घोर पाप क्यों मानती है? मांसाहारी हिन्दू भी गोमांस से क्यों परहेज करते हैं? पवित्र सावन महीने में तथा कार्त्तिक पूर्णिमा, गंगास्नान, पवित्र तीर्थों की यात्राओं के प्रसंग में किसी भी प्रकार के मांस–भक्षण को पाप क्यों मानती है? इसका उत्तर इन इतिहासकारों के पास नहीं है। ये कहते हैं कि बौद्धों के अहिंसा का प्रभाव हिन्दुओं पर पड़ा। उनसे कोई पूछे कि फिर जिन बौद्धों ने हिन्दुओं को अहिंसक बनाया वे कालान्तर में क्यों सर्वभक्षी बन गये? हम भगवान् बुद्ध के उस उपदेश को पूर्व उद्धृत कर चुके हैं जिसमें यह कहा गया है कि तथागत भगवान् गौतम बुद्ध से बहुत पूर्ववर्ती प्राचीनकाल में ब्राहण गौ आदि प्राणियों का मांस नहीं खाते थे (द्रष्टव्य–सुत्त निपात। अतः इतिहास और संस्कृति का उल्लंघन करके अर्थ करना अनर्थ ही नहीं उस ग्रंथ के रचनाकार के साथ अत्याचार करना कहा जाता है। फिर सर्वमान्य वेदों में अहिंसा तथा गोहत्या के विरोधी जो वचन हैं उनसे उनके (पश्चिमी तथा वामपंथी इतिहासकारों) द्वारा मांसविधायक अर्थ की संगति कैसे लगेगी? अतः हिन्दुओं या आर्यों के इतिहास, परम्परा और संस्कृति को बिना समझे गोमांस का वेदों से समर्थन करना पक्षपातपूर्ण ही नहीं निन्दनीय भी है।

डॉ. रामविलास शर्मा के विरोधी ये वामपंथी ऐसे भी हैं, जिन्हें जिस किसी विषय में चञ्चुप्रवेश अर्थात् सामान्य जानकारी भी न हो वहाँ भी अपना चोंच भिड़ा देते हैं तथा इस प्रकार का लेख लिख देते हैं जिससे यह आभास होता है कि उस विषय के विश्व में सबसे प्रामाणिक विद्वान् वे ही हैं। नमूना देखना हो तो भारत के प्रसिद्ध प्रगतिशील मार्क्सवादी लेखक डॉ. रामविलास शर्मा के धुरविरोधी डॉ. नामवर सिंह के लेख को देखिए–उन्होंने प्रसिद्ध पत्रिका 'आलोचना' त्रैमासिक सहस्राब्दी अंक पाँच में लिखा है– "नवजागरण के लिए दयानन्द ने 'ऋग्वेद' का एक नया भाष्य शुरू किया तो रामविलास जी ने भी नब्बे के दशक में लिखी सभी किताबों में टुकड़े–टुकड़े ऐसा ही कार्य किया– निश्चय ही आर्यसमाजी सातवलेकर के हिन्दी ऋग्वेद की मदद से, क्योंकि दयानन्द सिर्फ बहत्तर 72 वैदिक मन्त्रों का ही भाष्य कर पाये थे।" (आलोचना', अप्रैल–जून, 2001 ई., पृ.244)।

अब इसकी आलोचना में क्या लिखा जाए? जिसे यह मालूम ही नहीं है कि स्वामी दयानन्द ने कितने वेद–मन्त्रों का भाष्य लिखा है? स्वामी जी का वेदभाष्य लगभग 8 (आठ हजार) वेदमन्त्रों पर है। ऋग्वेद का दो तिहाई से ज्यादा (7 सातवें मण्डल के 61 इकसठवें सूक्त के 2 दूसरे मन्त्र तक) तथा समग्र यजुर्वेद के 1975 उन्नीस सौ पचहत्तर मन्त्रों का स्वामीजी कृत वेदभाष्य मौजूद है। जिन्हें वेदों के विषय में या स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य के सम्बन्ध में इतनी जानकारी भी नहीं है वे लोग और उनके पक्षधर और अनुयायी वेदों पर फतवा दे रहे हैं कि वैदिक आर्य गोमांसभक्षी थे!!! किमाश्चर्यमतः परम्।

हम इस निबन्ध का समापन वैज्ञानिक परिव्राजक डॉ. स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती डी. एस–सी., पूर्व अध्यक्ष रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय की एक पुस्तक के अल्पांश को उद्धृत कर करना चाहते हैं–"जिनका अपना कोई पक्ष नहीं है, जिनकी वेदों के सम्बन्ध में कोई निश्चित धारणा नहीं है, जो पूर्वापर का बिना विचार किये हुए कुछ शब्दों के आश्रय पर अपने स्वकल्पित सिद्धान्तों की उच्चस्वर से घोषणा कर देते हैं, जिनका 'वाद' इतना निष्पक्ष है कि 'न्यायदर्शन' के शब्दों में उसे 'वितण्डा' कहा जा सकता है, जो मानते तो यह है कि वेदों में कुछ भी नहीं है पर फिर भी अपनी आवश्यकता के अनुसार उनमें से सभी कुछ निकाल कर रख सकते हैं। इनमें मौलिकता तो इतनी है कि जो बर्बर प्रथायें कभी किसी के मस्तिष्क में समा भी न सके वे भी ये वेदों में दिखा सकते हैं।" (वेदों पर अश्लीलता का व्यर्थ आक्षेप, पृ. 8, संस्करण–द्वितीय, मई 2015 ई., प्रकाशक–श्री घूडमल प्रह्लादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डौन सिटी, राजस्थान)।

रणवीर राणञ्जय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, अमेठी पिन–227405 (उ.प्र.)
मो. 09415185521

प्रकरणज्ञ–पञ्चक

● देवनारायण भारद्वाज

(1) अक्ष कहीं पर लक्ष्य कहीं पर

'कहीं पर तीर कहीं पर निशाना' का सही निदर्शन सत्यार्थ प्रकाश में सहज ही मिल जाता है, जहाँ महर्षि दयानन्द ने 'सैन्धव, का उदाहरण देकर इस कथन को सुस्पष्ट किया है। सैन्धव का अर्थ नमक भी है और घोड़ा भी। जब राजा भोजन करने बैठे और 'सैन्धव आनय' कहे, सेवक घोड़ा ले आये, अथवा राजा यात्रा को प्रस्थान करे, और 'सैन्धव आनय' बोले तथा सेवक नमक लेकर दौड़ पड़े, तो दोनों स्थितियों में प्रकरणविद् न होने के कारण सेवक प्रताड़ना का पात्र है। देश में दो व्यक्तियों को 'रफी' कहकर याद किया जाता है। कभी अखबार में एक घटना पढ़ी थी। लखनऊ के निकटवर्ती जनपद बाराबंकी में रफी साहब की स्मृति में भव्य समारोह आयोजित हुआ था। उच्च पदस्थ राजनेता उसके मुख्य अतिथि थे। उनका खूब स्वागत–सम्मान हुआ। उन्होंने जोरदार भाषण भी दिया। किन्तु वे अपने सम्पूर्ण व्याख्यान में राष्ट्र नेता स्वर्गीय रफी अहमद किदवई के स्थान पर प्रसिद्ध फिल्मी गीत गायक मोहम्मद रफी की चर्चा करते रहे।

प्रकरणज्ञ न होकर प्रकरण अज्ञ होने का एक और नमूना देखिये। एक महिला ने अपने पति की प्रशंसा यों की, वे शेर की भाँति बहादुर, चीते की भाँति फुर्तीले और हाथी की भाँति मस्त चाल वाले हैं। यह सुनकर सहेली ने पूछ लिया–तो उन्हें देखने के लिए कितने का टिकट लेना पड़ता है? वर्तमान आधुनिक चिकित्सा पद्धति के दुर्योग का प्रसंग उस समय उपस्थित हो गया, जब डाक्टर साहब आधी रात को उठे और पत्नी से बोले, मैं अस्पताल जा रहा हूँ–फोन आया है, इमरजेंसी है, तुम प्रतीक्षा मत करना, आने में सुबह हो जायेगी। पत्नी बोली–क्यों जा रहे हो? किसी को अपनी मौत भी मर लेने दिया करो।

आजकल भारत में गोहत्या का बाजार गर्म है। चोरी–डकैती व धोखाधड़ी से वर्ग विशेष के लोग गौओं की हत्यायें करते हैं जब लोग इसका विरोध करते हैं तो इसे असहिष्णुता की संज्ञा दे दी जाती है। तथाकथित बुद्धिजीवी लोग वेद–शास्त्रों में गोमांस भक्षण का उल्लेख बताकर इस अपराध का समर्थन करके प्रकरण विहीनता का परिचय देते हैं। 'सत्यार्थ प्रकाश–एकादश समुल्लास' में अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि यज्ञबोधक शब्दों के हो गये अर्थ के अनर्थ को महर्षि दयानन्द ने सरल विधि से समझाते हुए प्रकरणबद्ध कर दिया है। उन्होंने कहा है कि घोड़े, गाय आदि पशु तथा मनुष्य मार के होम करना कहीं नहीं लिखा। किन्तु यह बात वाममार्गियों ने चलायी है। देखो राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे, विद्यादि का देने वाला यजमान और अग्नि में घी आदि का होम करना अश्वमेध, अन्न–इन्द्रियाँ, किरण, पृथिवी आदि को पवित्र रखना गोमेध; जब मनुष्य मर जाय, तब उसके शरीर का विधि पूर्वक दाह करना 'नरमेघ' कहाता है। परन्तु इन सत्य अर्थों को वे मूढ़ नहीं समझते, क्योंकि जो स्वार्थ बुद्धि होते हैं वे अपने स्वार्थ के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं जानते, मानते।

(2) सर पर गर्दभ या गन्धर्व

एक मित्र ने दूसरे मित्र से पूछा– इस बस्ती की स्त्रियाँ अपने पतियों को 'ए–जी' कह कर क्यों पुकारती हैं? मित्र ने कहा कि पति का नाम न लेकर संकोचवश यह सम्बोधन करती है। दूसरे मित्र ने समझाया–जब से रावण ने अपनी पत्नी मन्दोदरी की नेक सलाह नहीं मानी, तब से पत्नियाँ पतियों को 'ए–जी' अर्थात् अबे गधे के संक्षिप्त रूप से बुलाने लगीं। आपने देखा भी होगा–रावण के दस मुख के ऊपर ग्यारहवाँ गधे का ही सिर होता है। वैसे गधा भी कुछ कम उपयोगी नहीं है। धोबी के कपड़े दिन भर इधर से उधर ढोता रहता है फिर भी कहलाता है–"धोबी का गधा घर का न घाट का"। फिर भी प्रसन्न रहने की कला आप इससे तब सीख सकते हैं, जब ये अपने मित्र ऊँट से मिलते हैं। जब गधा ऊँट से कहता है–"अहो रूपम्–तभी ऊँट गधे से कहता है अहो ध्वनिम्।" एक साथ रहना तो ऐसा ही कहना है। सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास में व्यक्त महर्षि दयानन्द के कथन पर ध्यान दीजिये। "गान्धर्ववेद कि जिस को गान विद्या कहते हैं, उसके स्वर, राग, रागिनी, समय, ताल, ग्राम, तान, वादित्र, नृत्य, गीत आदि को यथावत सीखें, परन्तु मुख्य रूप से सामवेद का गान वादित्र वादन पूर्वक सीखें और नारद संहिता आदि जो आर्ष ग्रन्थ हैं उनको पढ़ें, परन्तु भड़वे, वेश्या और विषयासक्ति कारक वैरागियों के गर्दभ शब्दवत् व्यर्थ आलाप कभी न करें।" मांग–मांग कर दक्षिणा व मार्ग व्यय ठहरायें फिर भी सन्तुष्टि न पायें, वे ही मंच पर आकर 'इदन्नमम' का पाठ पढ़ायें, तब श्रोतागण उनके कहने में कैसे आयें? स्वामी सर्वदानन्द जी आर्य समाज के महोत्सव में पहुँचे। प्रातः कालीन उपदेश देकर वे नगर भ्रमण को निकल गये। संन्यास धर्म का पालन करते हुए एक सेठ के द्वार पर भोजन–भिक्षा की आवाज लगायी। सेठजी ने व्यंग्य करते हुए कह दिया–हट्टा कट्टा भीख मांगता घूम रहा। कोई काम क्यों नहीं करता! स्वामी जी ने सेठ से काम बताने के लिए कहा। सेठ का मकान बन रहा था। उन्होंने ईंटे उठाने का काम बता दिया। काम पूरा होने पर उन्हें भोजन दिया गया। रात्रिकालीन बृहद् सभा में सेठ जी आये और स्वामी जी को मञ्चासीन देखकर हतप्रभ रह गये। लगे क्षमायाचना करने। 'इदन्नमम' का पालन करने वाले उपदेशक सभा भवन को श्रोताओं से भरते हैं, जबकि 'इदंमम' कहने वाले समाज को उजाड़ देते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों के दस मुखों पर गानपूर्वक विराजमान बुद्धि गन्दर्भ का गौरव प्रदान करती है, जबकि इन्हीं दस मुखों से महाभोग करने वाले रावण सदृश राक्षसों के सिर पर कठोर कर्कश घोष कारक गर्दभ का मुखड़ा ही दिखाई देता है।

(3) नानक जी के वानक जी

सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने गुरु नानक के आशय को अच्छा बताया है। ओं सत्यनाम कर्ता पुरुष निर्भो निर्वैर अकालमूर्त अजोनि सहभं गुरु प्रसाद जप, आदि सच, जुगादि सच, है भी सच, नानक हो सी भी सच।। अर्थात् ओम् जिसका सत्यनाम है, वह कर्ता पुरुष, भय और वैर रहित 'अकालमूर्ति' जो काल में और योनि में नहीं आता, प्रकाशमान है, उसी का जप गुरु की कृपा से करें। यह परमात्मा आदि में सच था, जुगों की आदि में सच था, वर्तमान में सच है और होगा भी सच। कहते हैं ऐसा उत्तम उपदेश देने वाले नानक जी एक बार मुल्तान शहर में पहुँच गये। वहाँ पहले से ही बहुत सारे सूफी सन्त रहा करते थे। उन सबके मन में विचार आया कि नानक जी का इस ढंग से स्वागत किया जाये कि वे समझ जायें कि यहाँ पर उनकी आवश्यकता नहीं है, और वे वापस चले जायें, क्योंकि यहाँ पर पहले से ही बहुत सूफी सन्त बसते हैं। इसके लिए उन सन्तों ने एक व्यक्ति के द्वारा नानक जी के स्वागत में दूध का लबालब भरा कटोरा भेज दिया। नानक जी को इसका प्रकरण समझने में देर नहीं लगी। उन्होंने उसी दूध में अपने पास से दो बतासे डाल दिये और ऊपर से एक गुलाब का फूल तैरा दिया। दूध फैला भी नहीं और वापस सन्त मण्डली के पास पहुँच गया। गुरु जी के आशय को सन्तों ने सहज ही भाँप लिया। भले ही यहाँ पर सन्तों का बड़ा समागम है, किन्तु मैं दूध में बतासे की भाँति घुल मिल जाऊंगा, माधुर्य के साथ पुष्पवत सुगन्धि भी बढ़ा दूँगा। इस प्रदर्शन से सन्तों की शंकाओं का निवारण हो गया।

गुरु नानक जी एक स्थानिक नहीं, भ्रमणशील राही थे। प्रकरण को जोड़ने में उनका जवाब नहीं था। एक ग्राम में पहुँचे। ग्रामवासियों की दशा–दुर्दशा देखकर वहाँ से चलते बने, किन्तु वे आशीर्वाद देना नहीं भूले। बोले बने रहो–आबाद रहो। वे लोग प्रसन्न हो गये। कुछ दिनों बाद गुरुजी जी एक अन्य ग्राम में पहुँच गये। वहाँ के लोगों का सदाचरण–स्वागत–सेवा की भावना को देखा। पर्याप्त काल तक वहाँ प्रवास कर जब चलने लगे, तो यहाँ भी आशीर्वाद देना भला कैसे भूलते। आप लोग उजड़ जायें और संसार में बिखर जायें। सुनने वालों को पूर्व ग्राम में जहाँ अच्छा लगा था, वहीं यहाँ पर बहुत बुरा लगा। पर गुरु जी के समाधन को सुनकर सब सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने समझाया बुरे लोग जहाँ जायेंगे, बुराई साथ ले जायेंगे और उसे बढ़ायेंगे। अच्छे लोग जहाँ जायेंगे, वहाँ अच्छाई का बढ़ायेंगे। बुरा व्यक्ति सोता रहे तो भला, अच्छा व्यक्ति दौड़ता–भागता रहेगा तो संसार में अच्छाई को खूब बढ़ायेगा। कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अर्थात् संसार को श्रेष्ठ बनाने का यही सहज सूत्र है।

(4) बस्टा–बक्सा–बच्चा

हकलाता हुआ एक शिष्य गुरुजी के पास दौड़ता आया। गुरुजी नदी में बस्टा था। गुरु जी ने पूछा–बस्ता था। उसने कहा नहीं; हाथों को दिशाओं की ओर फैलाकर बोला–बस्टा–बस्टा। अब गुरुजी समझ गये–बक्सा। पता चला, उसने नदी में धार की ओर बहता हुआ बड़ा बक्सा देखा, उसमें मजबूत ताला लगा हुआ था। मूल्यवान वस्तुएं समझकर वह उसे किनारे की ओर खींच लाया। किनारे पर आते ही उसका पैर फिसल गया और बक्सा छूट कर अदृश्य हो गया। वह इसी कारण से दुःखी था। गुरु जी ने समझाया वह बक्सा पहले भी तेरा नहीं था–अब भी तेरा नहीं, न तुझे कुछ मिला, न तेरे पास से कुछ गया। तेरा हिसाब–किताब बराबर रहा। फिर क्यों तू उदास है। तू ने जो तैर कर लाने का श्रम किया, उसे तू यही पाठ पढ़ने का शुल्क मान कर खुश हो जा। तुझसे भी अधिक दुःखी वह सेठ था जो मेरे पास रोते हुए अया था। कहता था– गुरुजी मुझे तीन लाख का घाटा हो गया। हाय, मैं क्या करूँ? पीछे से दौड़ती हुई उसकी पत्नी आ गयी। बोली–गुरुजी! इन्हें तीन लाख का घाटा नहीं, तीन लाख का लाभ हुआ है। सेठ जी ने व्यवसाय में छः लाख के लाभ की योजना बनायी थी। इनके पास से कुछ हानि नहीं हुई, बल्कि तीन लाख का लाभ ही हुआ। गुरुजी के प्रभाव से पत्नी की बात समझ में आयी और सेठ जी सन्तुष्ट होकर चले गये।

परोपकारक स्वभाव विहीन एक तरुण नदी के किनारे पर घूम रहा था। नगर के अनेकशः नर–नारी वहाँ पर पर्यटन हेतु आये थे। एक दम्पति का नन्हा बच्चा नदी में गिर गया, वे रोने लगे। वहाँ उपस्थित अन्य अनेक स्त्री–पुरुष तैरना नहीं जानते थे। वह तरुण अच्छा तैराक था फिर भी तमाशा देख रहा था। यकायक एक वृद्ध ने उसे धक्का देकर नदी में गिरा दिया। उपस्थित अनेक लोगों ने शोर मचाया और कहा–अब तुम नदी में पहुँच ही गये हो तो बच्चे को डूबने से बचा कर उठा लाओ। उसने ऐसा ही किया। ऊपर आते ही माँ–बाप ने बच्चे को अपनी छाती से लगा लिया। किन्तु उस तरुण ने बिना यह समझे कि उसने कितना बड़ा परोपकार किया है, शोर मचाना शुरू कर दिया–बताओ मुझे नदी में धक्का किसने दिया? एक वृद्ध ने उसे प्रकरण की समझ सिखायी और पुरस्कृत करते हुए परोपकार का पाठ पढ़ाया। अपने बच्चे को कौन खोना चाहता है? कोई सज्जन आश्रम को गाय दे गये। गुरुजी को पता चला। बोले, अच्छा है आप लोगों को मीठा दूध पीने को मिलेगा। गोदान कर्ता ने गाय का वत्स (बच्चा) अपने ही पास रखा हुआ था। उसकी विरह वेदना को देख कर वह उसकी माँ–गौ

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

हम कब तक सच को ढँके रहेंगे?

● हरिकृष्ण निगम

भारत में ''नाज़ी'' और ''हिटलरवादी'' विशेषणों का असली हकदार!

यदि मैंने स्वयं अमेरिका में कुछ दिनों पहले अपने प्रवास के दौरान भारतीय कार्यक्रमों की एक बड़ी चैनल द्वारा प्रसारित एक लोकप्रिय हिन्दी पारिवारिक सीरियल "हिटलर दीदी", उसके बदले शीर्षक "जनरल दीदी" के नाम से नहीं देखा होता तो मुझे ज्ञात ही नहीं होता कि भारतीय भी अमेरिका व पश्चिमी देशों की **हिटलर** के नाम मात्र से पैदा होनेवाली **एलर्जी** या विक्षिप्तता से आतंकित रहते हैं। साफ है कि पश्चिमी मानसिकता मनोरंजन के ऐसे हल्के–फुल्के शीर्षक को भी सहन नहीं कर सकती है यदि हिटलर का नाम लिया जाता है। वहां किसी को **हिटलर** या **नाज़ी** कहना एक गाली ही नहीं, अपराध जैसा भी है। कुछ भारतीय नेता एवं बुद्धिजीवी अमेरिकी संवेदनशील जनमत से इतना भयभीत रहते हैं कि वे इस प्रतिबन्धित विशेषण का उल्लेख भी नहीं करते हैं पर अमेरिकी सन्दर्भ से दूर विरोधी को हर अवसर पर फासीवादी, नाज़ीवादी या हिटलरवादी कहने से नहीं चूकते हैं। क्या उन्हें इसका अन्तर्निहित अर्थ ज्ञात है?

हाल में एक रोचक टिप्पणी द्वारा प्रश्न उठाया गया है। अमेरिका के वरिष्ठ या छोटे बुश, क्लिन्टन या ओबामा जैसे शक्तिशाली राष्ट्रपतियों ने अफगानिस्तान, इराक या पश्चिम एशिया के कई ठिकानों पर निरपराध लोगों की हत्याओं या अबू गरीब अथवा "गुआन्तानामो बे" के अलावा यंत्रणा देनेवाले गोपनीय कारागारों की स्थापना की, क्रूज प्रक्षेपास्त्रों या ड्रोन विमानों द्वारा निर्बोध लोग भी मारे गए पर आश्चर्य का विषय है उनके किसी भी आलोचक या मानवाधिकार संगठन ने उन्हें "हिटलर"या "नाज़ी" ठहरा कर लांछन नहीं लगाया। यह सम्भव क्यों नहीं था या किसी ने ऐसा आरोप लगाने का साहस क्यों नहीं दिखाया?

दूसरी ओर यदि हम अपने देश भारत की ओर दृष्टि डालें, हर राजनीतिक विरोधी पर लगभग सातवें दिन फासिस्ट, नाज़ीवादी या हिटलर का विशेषण जड़ना एक सामान्य बात है। आखिर इसके पीछे बात क्या है? आधुनिक इतिहास साक्षी है कि आज के युग में अमेरिका अनुमोदित किसी भी तानाशाह, सैनिक शासक, धर्मतंत्र या उसके जनविरोधी प्रियपात्र द्वारा कितना भी बड़ा नरसंहार हुआ हो पर फिर भी उनके बड़े से बड़े देशी–विदेशी आलोचक उनके अमेरिकी पिष्टपोषकों को नाज़ी या हिटलर शब्दों द्वारा कभी इंगित नहीं करते हैं। इसकी जड़ में जाना आवश्यक और प्रासंगिक होगा। क्या यह आज हमारे राजनीतिक परिदृश्य की सर्वसम्मति से अपनाई "राजनीतिक औचित्य" के नाम पर फैलाई धोखाधड़ी तो नहीं है?

सच देखा जाए तो हिटलर को **नाज़ी** कहना ही दिग्भ्रमित करनेवाला है क्योंकि वह एक कट्टर ईसाई था और उसकी प्रसिद्ध आत्मकथा **माईन काम्फ** तक में उसने लगभग 200 पृष्ठों में सिर्फ उस चिन्ता व व्यथा की व्याख्या की है कि ईसाइयत पर यहूदियों द्वारा पड़ते आघातों से किस तरह रक्षा की जाए। इसीलिए वेटिकन के तत्कालीन पोप और बाद के पौन्टिफ बराबर यही कहते रहे कि हिटलर के अत्याचार मात्र दुष्प्रचार के लिए अतिरंजित रूप से प्रस्तुत किए गए हैं। **माईन काम्फ** का पहला खण्ड एडोल्फ हिटलर द्वारा तब लिखा गया था जब उसे बवेरिया के किले की जेल में बंद रखा गया था। उसके अनुसार वह जर्मनी के घोर अपमान का समय था जो उसके विरुद्ध फ्रान्सीसी कूटनीति का उद्देश्य था। जब हिटलर अप्रैल 1924 में लैण्डबर्ग लेक में एक दुर्ग में कारावास की सजा भुगत रहा था तब हिटलर ने अपने ग्रंथ के दोनों भागों की प्रस्तुति की थी। उस समय वह ईसाई जगत का एक उभरता महानायक भी था और उस पर अनेक प्रशंसात्मक टिप्पणियाँ होती थीं। आज हिटलर को नस्लवादी युद्धोन्माद के लिए मानवता का शत्रु समझा जाता है पर ईसाई धर्म की रक्षा के लिए उसके प्रवक्ता के रूप को अमेरिका एवं पश्चिमी देश छिपाते हैं और **नाज़ी** शब्द प्रयोग कर उसके विश्व रूप को ही उजागर करते हैं। कट्टर ईसाई पंथ के अनुयायी के रूप को दबाते हैं। इससे बड़ा बौद्धिक षड्यंत्र क्या हो सकता है कि जिस कट्टर ईसाई तानाशाह ने आर्य–हिन्दू धर्म के प्रतीक स्वस्तिक या गर्भाधान संस्कार से लेकर अन्य षोडष संस्कारों को यूजेनिक्स या सुजननशास्त्र के नाम पर अपहृत किया उसको नस्लवादी कहकर आर्य–हिन्दू धर्म के वैज्ञानिक पक्षों पर जो जन्म से जीवन के अन्त तक सर्वोत्तम की गुणवत्ता व उत्तरजीविता पर बल देता है, उसे नस्लवादी कहने की कोशिश की जाती है।

हम सब जानते हैं कि एक अपराधी की असली पहचान बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि हमारे मस्तिष्क में उसकी छवि ही हमारी प्रतिक्रिया या अहसासों को निश्चित करती है। हम **नाज़ी** अत्याचारों व उनके नरसंहार की बात तो करते हैं पर **जर्मन हौरर्स** शब्द कभी नहीं कहते हैं। क्या वे सिर्फ नाज़ी थे, जर्मन नहीं? वे नाज़ी विचारधारा के लिए प्रतिबद्ध थे इसीलिए **नाज़ी अत्याचार** ही कहा जाता है–मानवता के विरुद्ध जर्मन अत्याचार नहीं।

पर वे जर्मन सिर्फ नाजी नहीं, कट्टर ईसाई भी थे और वह भी उनकी एक बड़ी पहचान थी, जो यहूदियों के धर्म, आचरण व परम्पराओं की घोर भर्त्सना करते थे। वे सभी अपनी मासिक आय से चर्च के लिए स्वेच्छा से एक कर कटवाते थे। एक अभिलेखित तथ्य के अनुसार वेटिकन को उनका यह अनुदान 100 मिलियन डालर से अधिक का था जो आज के मूल्य में लगभग दो बिलियन डालर होगा। नाज़ी विचारधारा स्पष्ट रूप से ईसाई विचारधाराओं का विस्तार था। नाज़ी साम्राज्यवादी दृष्टि ईसाई वैश्विक विस्तारवादी दृष्टि से पैदा हुई थी और नाज़ी अत्याचारों का स्थानीय रूप दुनिया की आक्रामक ईसाई रणनीतियों का ही एक छोटा हिस्सा था।

चाहे हालीवुड की अनेक फिल्में हों या मुद्रित मीडिया या द्वितीय विश्व युद्ध के ऊपर रचा विपुल साहित्य हो वह सिर्फ **नाज़ी हारर्स** की बात करता रहा। कभी ईसाइयों के शोषण, अत्याचार या नरसंहार का नहींक्योंकि वे ईसाई आस्था पर आक्रामक रुख दिखाने से बचते थे। पर उस होलोकास्ट के लिए किसी को तो बलि का बकरा बनाना था जिससे सच ढँका रहे। हिटलर का अपहृत किया एक प्रतीक **स्वस्तिक** था उसपर पश्चिम ने अपना ध्यान केन्द्रित किया क्योंकि अप्रत्यक्ष रूप से आर्य–हिन्दुओं पर यह पहला सुनियोजित (आर्केस्ट्रेटड) हमला था। उस समय की सारी हालीवुड फिल्मों, ग्रंथों व युद्ध उपन्यासों में निरन्तर उलटा–तिरछा स्वस्तिक प्रस्तुत कर यह तथ्य दबाया गया कि नाज़ी विचारधारा ईसाई अवधारणा से नहीं उद्भूत हुई है। हर नाज़ी जन्म से ही कट्टर ईसाई मान्यताओं, अनुभूतियों व संस्कारों में ही पला था और नाज़ी बनने के बाद वह आस्थावान ईसाई की तरह चर्च का टैक्स स्वेच्छा से भुगतान करता था जो एक बड़ी राशि थी।

क्या यह एक चतुर दूरदर्शी रणनीति नहीं थी कि सदैव विश्वमत के समक्ष यह जताया गया कि नाज़ीवाद की जड़ें आर्य–हिन्दू धर्म में हैं। क्या कभी हमारे देश में भी किसी बुद्धिजीवी ने यह इंगित किया कि हिटलर का उल्टा स्वस्तिक, हिन्दू धर्म में अशुभ माना जाता है और यह अस्वीकृत और अमान्य है। वेटिकन के विश्वयुद्ध के उपरान्त एक नीतिविषयक दस्तावेज के अध्ययन से इन खुलासों को प्रत्यक्ष रूप से सत्यापित किया जा सकता है।

ए–1002, पंचशील हाइट्स,
महावीर नगर, कांदिवली (प), मुंबई–400067

☞ *पृष्ठ 07 का शेष*

प्रकरणज्ञ–पञ्चक

को वापस ले आया। गुरुजी को बताया गया। उन्होंने कहा कोई बात नहीं, अब आप लोगों को चारा लाने व गोबर उठाने की चिन्ता से मुक्ति मिल गयी। हर हाल में खुश रहना–यही जीवन की कला है।

(5) **खोपड़ी में खोयी पड़ी–कला**

डाक्टर के पास एक मरीज लाया गया, उसकी खोपड़ी फटी पड़ी थी। डाक्टर ने पूछा– तुम्हारी खोपड़ी कैसे फट गयी? उसने रोते कराहते हुए बताया–हम कई लोग मन्दिर–निर्माण के लिए बड़े–बड़े पत्थरों को तोड़कर टुकड़े बना रहे थे। वहाँ से एक कलाकार निकले, बोले हाथों से ही काम लेते रहोगे, कभी खोपड़ी से भी काम ले लिया करो। मैंने खोपड़ी से क्या काम लिया, पत्थर तो टूटा नहीं खोपड़ी ही टूट गयी। इस श्रमिक को इलाज कराने हेतु यहीं छोड़ देते हैं। सुनकर दूसरे मजदूर की खोपड़ी में सोया पड़ा कलाकार जाग गया। कीमती एवं सुन्दर पत्थरों में से ही एक काला–कलूटा–बैडौल पत्थर जो मालिक ने व्यर्थ समझ कर फेंक दिया था, सक्षम मूर्ति गुरु से अल्प काल में ही मूर्तिकला मर्मज्ञ होकर उसने उपेक्षित पत्थर से देव मूर्ति की रचना कर दी। लोग उसकी मूर्ति की सराहना करते, तो विनम्र भाव से कहता–मूर्ति तो पहले से ही पत्थर में थी, मैंने उसे मात्र उजागर कर दिया। लोगों का उत्तर होता, मूर्ति पत्थर में नहीं तुम्हारी खोपड़ी में ही कहीं खोयी पड़ी थी, तुम्हारी कला–कल्पना ने ही उसे बाहर निकाल दिया। वे सुडौल सफेद पत्थर तो दीवार, फर्श, सीढ़ियों पर ही लगकर रह गये। उपेक्षित फेंके गये ऊबड़–खाबड़ बेडौल पत्थर से निर्मित देवमूर्ति को लोगों ने मन्दिर के सिंहासन पर विराजमान कर दिया।

प्रजा वर्ग ने अपने लोकप्रिय सम्राट को जन्मोत्सव पर स्वर्ण मूर्ति का उपहार देने का निश्चय किया। इसके लिए यत्र–तत्र से स्वर्ण मांग मांग कर एकत्र किया गया। मूर्तिकार ने एक सुन्दर श्रेष्ठ मानव मूर्ति का निर्माण किया। प्रजा–प्रतिनिधियों द्वारा भव्य समारोह में वह मानवमूर्ति सम्राट को भेंट कर दी गयी। सम्राट ने प्रमुख स्थान पर एक आकर्षक कक्ष का निर्माण करके मूर्ति दर्शनार्थ स्थापित कर दी। लोगों ने उसे मन्दिर व मानव मूर्ति को दुर्लभ स्वर्णमयी देवमूर्ति मानकर पूजना आरम्भ कर दिया । मूर्ति पर भाँति–भाँति के फल–फूल–मिष्ठान्न चढ़ने लगे। उस पर मक्खियाँ भी मँडराने लगीं। मन्दिर व मूर्ति की प्रसिद्धि सुनकर अपनी बनायी मूर्ति की समीक्षा करने एक दिन मूर्तिकार वहाँ आया। वह भोग–चढ़ावा से ढँकी मूर्ति की अमूर्त दशा देख कर बहुत दुःखी हुआ। नर तन धारी वास्तविक मानव की यही स्थिति है। उसके ऊपर प्रोफेसर, अफसर, डाक्टर, इन्जीनियर सन्त–महन्त उपाधियों का ऐसा चढ़ावा चढ़ जाता है कि मननशील सच्चे मनुष्य का दर्शन दुर्लभ हो जाता है। अस्तु वेद का सन्देश है–'मनुर्भव' कुछ भी बनो, पर पहले मनुष्य बनो।

'वरेण्यम्' अवन्तिका(प्रथम)
रामघाट मार्ग, अलीगढ़ (उ.प्र.)

वेदायुर्वेदम् नास्ति आयुर्वेदस्य पारम्

● रवीन्द्र पोतदार

चिकित्सा शास्त्र समुद्र की तरह अगाध है, अवर्णनीय है, लाखों श्लोकों से भी उसको कहा नहीं जा सकता है। ऋक् कहते हैं गुणों को अतः ऋग्वेद में समस्त पदार्थों के गुणों का वर्णन है, ठीक वैसे ही आयुर्वेद में समस्त जीवनोपयोगी एवं रोगनाशक औषधीय गुणों का वर्णन वेदाधार से होने के कारण आयुर्वेद, ऋग्वेद का उपवेद है। अतः समस्त वेदीय उपबंध आदि इनके उपवेदों पर भी बंधनकारक हैं, यह तथ्य समस्त आयुर्वेद प्रयोक्ता एवं उपदेशकों को अच्छी तरह जान लेना चाहिये। महर्षि दयानन्द ने वैद्यक शास्त्र–आयुर्वेद के मूल के संबंध में लिखा है "सुमित्रिया न आप औषधयः सन्तु। दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः।। यजु. अ.6, म. 22 अर्थात् हे परमेश्वर! आपकी कृपा से (आपः) अर्थात् जो प्राण और जल आदि पदार्थ तथा (ओषधयः) सोमलता आदि सब ओषधि, (नः) हमारे लिये, (सुमित्रियाः सन्तु) सुखकारक हों। तथा (दुर्मित्रियाः) जो दुष्ट, प्रमादी, (अर्थात् वेद और परमात्मा के स्वभाव विरुद्ध आचरण वाले) हमारे द्वेषी लोग हैं और हम जिन दुष्टों (अमानवीय व्यवहार के करने वाले क्रूर) से द्वेष करते हैं, उनके लिये विरोधिनी हों। क्योंकि जो धर्मात्मा और पथ्य (आयुर्वेद में पथ्या–पथ्य का अत्यंत महत्व है) के करने वाले मनुष्य हैं, उनको ईश्वर के रचे सब पदार्थ सुख देने वाले होते हैं और जो कुपथ्य करने वाले (क्रूर एवं हिंसक) तथा पापी हैं, उनके लिये सदा दुःख देने वाले होते हैं।"

सुश्रुत संहिता एवं चरक संहिता की "सत्यार्थप्रकाश" में पठनीय ग्रंथों की सूची में पढ़ा गया है। "सुश्रुत" में धन्वन्तरि मुनि द्वारा अपने शिष्य सुश्रुत के माध्यम से रोगों को शल्य (कांटा) मानकर किया गया है तथा ओषधीय प्रयोग के साथ यह प्रमुख रूप से शल्यशास्त्र है।

'शास्त्र' का जहां तक संबंध है यह ऐसा ग्रंथ होता है जो वेद से प्रकाशित, सम्पूर्ण मानव के हित साधन के लिये उपदेशित, चयनित विषय पर पूर्ण व्याख्यान–शंका समाधान सहित एवं पूर्व उपदेशित न हो जैसे चबे हुए को चबाना आदि रहित एवं ऋषि–मुनि द्वारा समर्थित होवे।

चूंकि हमने यहां हमने व्याख्या के लिये "सुश्रुत संहिता" का चयन किया है अतः उपरोक्त गुणों को ध्यान में रखकर ही हम समय–समय पर इसका प्रतिपादन करेंगे।

एक भ्रांति विकास अथवा प्रगति को लेकर भी समाज में व्याप्त है अतः स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि प्रगति वह है जो अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये उसी दिशा में किया गया प्रयत्न हो। चाहे व्यक्तिगत प्रयत्न हो, समाज द्वारा किया जाने वाला कार्य हो अथवा सरकार–पक्ष–विपक्ष द्वारा किया गया आयोजन–कार्य–योजना हो अगर वह मानव के मुख्य उद्देश्य अर्थात् दुःख से मुक्ति से अन्यथा होवे तो वह कर्त्तव्य नहीं है, उसका विरोध वा बहिष्कार करना हमारा कर्त्तव्य है।

निरोगी होने एवं स्वस्थ बने रहने में पर्यावरण का महत्वपूर्ण योगदान है। वर्तमान में पर्यावरण जितना प्रदूषित है शायद ही पूर्व में कभी रहा होगा।

वर्त्तमान समय में वेद विरुद्ध मत, नीतियां एवं व्यवहार या कहें अनीतियाँ–अंग्रेज नीति तथा ऐलोपैथ ही सर्वत्र प्रचलित एवं प्रसारित हैं, जो कि सर्वत्र व्याप्त दुःख का कारण है। यहां यह शंका की जा सकती है कि क्या आयुर्वेद मार्ग से दुःख नाश एवं मुक्ति की प्राप्ति की जा सकती है? निश्चय रूप से ऐसा हो सकता है क्योंकि सत्यरूपी एक जहाज है जिसमें अनेक विभाग हैं अतः किसी एक भाग को ग्रहण करने से जहाज की प्राप्ति हो सकती है। अतः योग शास्त्र अर्थात् परमात्मा को पाने का उपाय में कहा है "व्याधिस्त्यानसंशय...योगदर्शन 1/30, को अन्तरायों में गिना है। इसके भाष्य में महर्षि व्यास ने कहा है–वात पित्त कफ रूप धातुओं की विषमता, रस की विषमता और इन्द्रियों की विषमता का नाम व्याधि (रोग) है और ये समाधि के अन्तराय अर्थात् विघ्न हैं। आयुर्वेद हमें इस अन्तराय से छुटकारा दिलाता है अर्थात् यह योग साधक शास्त्र है।

इस शास्त्र के उपदेश के विषय में धन्वंतरि मुनि कहते हैं "इह खल्वायुर्वेद प्रयोजनं–व्याध्युसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः स्वस्थस्य रक्षणं च।।" सुश्रुत सूत्र भाग 1/14 अर्थात्–रोगों से आक्रान्त प्राणियों की रोगों से मुक्त करना और स्वस्थ मनुष्यों के स्वास्थ्य की रक्षा करना। यही आयुर्वेद का मुख्य प्रयोजन है।

पुनः यह प्रश्न उठ सकता है कि 'स्वस्थ' किसे कहा जाये, उसके लक्षण क्या हैं? अतः पुनः कहा है कि "समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।। सु 16/41 अर्थात् समान दोषवाला, समान (न मन्द, न तीक्ष्ण, न विषमाग्नि) अग्निवाला, समान धातु, समान मलवाला, समान क्रियावाला, प्रसन्न आत्मा इन्द्रियमनवाला पुरुष स्वस्थ कहाता है। इससे क्या आधियों कि इन सब व्याधि अथवा शल्यों को शरीर–आत्मा–मन–इन्द्रियों से निकालकर निःशल्य अर्थात् स्वस्थ करने के उपाय इस शास्त्र में हैं।

क्या संसार की समस्त पैथियों में किसी ने इस तरह का व्याख्यान किया है, क्या उनके पास मनुष्य को स्वस्थ करने के उपाय हैं? सिवा इसके अगर उन्हें स्वस्थ मनुष्य के गुण, रोग का कारण–निदान आदि का परिचय नहीं है तो वे कैसे कह सकते हैं कि हम चिकित्सा करेंगे?

इस स्तम्भ के माध्यम से हम आयुर्वेद को महिमामंडित तो करेंगे ही परन्तु साथ ही अन्य पैथियों की कमजोरी अथवा उलट उपायों का खुलासा तथा बतायेंगे कि रोग निवारण एवं स्वास्थ्य के सम्पूर्ण उपाय आयुर्वेद में उपलब्ध चाहे वे व्याधियां आज के जगत् में हो अथवा भविष्य में आने वाली हों और सिर्फ मनुष्य ही नहीं प्राणिमात्र के कल्याण एवं चिकित्सा का सम्पूर्ण व्याख्यान इस शास्त्र में उपलब्ध है।

ग्राम/पोस्ट–चन्देसरा
तह./जिला–उज्जैन (म.प्र.)
पिन–456664
मो. 9826012189

अभिनिवेश

● अभिमन्यु कुमार खुल्लर

विद्वान लोग जीवात्मा के लिये पांच क्लेश (दुःख) बताते हैं। अविद्या, अस्मिता, राग–द्वेष और अभिनिवेश। यहां हम पूर्व के चार दुःखों की चर्चा नहीं करेंगे क्योंकि इनमें ही उलझकर मानव का सम्पूर्ण जीवन व्यतीत हो जाता है और जब जीवन का संध्याकाल–वार्धक्य (बुढ़ापा) आता है तब मौत खड़ी दिखाई देती है और वह मरना नहीं चाहता। सब छूटने की कल्पना से ही वह भयग्रस्त हो जाता है। प्रसिद्ध गायक श्री के.एल. सहगल का वह लोकप्रिय गाना याद आ गया–

"बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाय
.....अपना, बेगाना सब छूटो जाय"

यह भी अच्छा ही है कि यह क्लेश यौवन समाप्ति के पश्चात् ही होता है अन्यथा जीवन का उत्साह, कार्य करने की क्षमता और रसोभोग करने का स्वाद ही फीका पड़ जाय। महाराज भर्तृहरि को भी जीवन के उत्तरार्ध में ही ज्ञान प्राप्त हुआ था। इसीलिये उन्होंने श्रृंगार–शतक पहिले लिखा और वैराग्य–शतक बाद में। अनेक बार वह –श्रृंगार और वैराग्य के झूले में झूलते रहे। अस्तु,

स्वतंत्र सत्ता आत्मा को परमात्मा ने पंचभूत (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा) पदार्थों से निर्मित कर जीवात्मा का स्वरूप प्रदान कर दिया। आत्मा को देह का कलेवर परमात्मा ने प्रदान किया है। सृष्टि रचना के निर्धारित क्रम से परमात्मा जीवात्मा को कैसे अलग कर सकता है? सृष्टि में किसी भी पदार्थ के रचना क्रम को देखिए। बीज अंकुरित होकर, पौधा बनता है। यौवन काल में उसमें फूल खिलते हैं फिर निर्धारित अवधि में समाप्त हो जाता है। फल वाले वृक्षों में जीवन के निर्धारित समय तक फल फूल आते हैं और फिर वह पंच तत्वों में विलीन हो जाते हैं। ईश्वर ने यही हाल इस देह का भी किया है। सम्पूर्ण रचना से पृथक इस देहधारी मनुष्य को बुद्धि, विवेक दिया है। वह अविद्या (अज्ञान), अस्मिता (आत्मश्लाघा, अहंकार, मोह), राग (अनुराग, मोह, सांसारिक सुखों की अभिलाषा, ईर्ष्या, द्वेष), द्वेष (शत्रुता, वैर, विरोध) के चक्कर में इस तरह पड़ जाता है कि विवेक को एक तरफ रख कर देह को ही सत्य समझता है और उसको सुरक्षित रखने में सम्पूर्ण शक्ति लगा देता है। अन्त में होता वही है जो विधि रचि राखा। मृत्यु का आलिंगन करना ही पड़ता है।

यक्ष और युधिष्ठिर संवाद महाभारत में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। संदर्भित प्रसंग में एक ही संवाद उपयोगी है। यक्ष ने पूछा–संसार का सबसे बड़ा सत्य क्या है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया–भगवान! संसार का सबसे बड़ा सत्य यही है कि मानव नित्य अन्य मानवों को मरते हुए देखता है और वह सोचता है कि यह मरेगा, वह मरेगा, मैं नहीं मरूंगा।

यक्ष और युधिष्ठिर संवाद महाभारत में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। संदर्भित प्रसंग में एक ही संवाद उपयोगी है। यक्ष ने पूछा–संसार का सबसे बड़ा सत्य क्या है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया–भगवान! संसार का सबसे बड़ा सत्य यही है कि मानव नित्य अन्य मानवों को मरते हुए देखता है और वह सोचता है कि यह मरेगा, वह मरेगा, मैं नहीं मरूंगा।

शाक्य मुनि गौतम बुद्ध प्रवचन कर रहे

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

पत्र/कविता

प्रत्येक अवस्था में सत्कार व दान करना चाहिए

आर्य जगत की साप्ताहिक पत्रिका 10–16जनवरी 2016 के पृष्ठ 10 पर शंका व्यक्त की है कि 'अश्रद्धया देयम्' का सही अर्थ क्या है? क्योंकि कुछ विद्वानों इसका अर्थ–"अश्रद्धा से भी देना चाहिए" किया है, अन्य ने "अश्रद्धा से दान (अदेयम्) नहीं देना चाहिए। ऐसा उन्होंने 'अदेयम्' के 'अ' उपसर्ग को लुप्त मान कर किया है परन्तु वाक्य में ऐसा नहीं है।

यदि **"अश्रद्धया ऽदेयम्"** ऐसा मान भी लें तो दान की महिमा का ह्रास होगा। दान तो प्रत्येक दशा में दिया जा सकता है श्रद्धा होने पर भी, श्रद्धा न होने पर भी।

एकादश अनुवाक के दूसरे खण्ड में आचार्य शिष्य को उपदेश करते है कि **"यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि"** अर्थात् जो हमारे अच्छे कर्म हैं उनका तुम्हें सेवन करना चाहिए। तीसरे खण्ड में कहा है–**"ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणा:तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम्"** अर्थात् जो कोई हम से श्रेष्ठ अन्य ब्राह्मण हैं उनका तुमको आसन से सत्कार करना चाहिए। आगे कहा है–**श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।** अर्थात् प्रत्येक दशा में विद्वान ब्राह्मण को दान देना चाहिए क्योंकि दान देना उत्तम कर्म है यह निष्फल नहीं जाता।

यदि अश्रद्धा से दान नहीं दिया जायेगा तो ब्राह्मण का आदर न करने का पाप लगेगा, क्योंकि ब्राह्मण से ज्ञान प्राप्त होता है उसका मूल्य चुकाना धर्म है। ब्राह्मण का जीवनोपार्जन का साधन शिक्षा देना है।

उपनिषद् में आगे कहा कि–जो तुमको कर्म में संदेह हो अर्थात यह संदेह हो कि दान में दिया धन अधार्मिक कर्म में लग सकता है तो न देना चाहिए। जैसा कि वर्तमान में 'आसाराम' को बहुतों ने दान दिया, जिसे आसाराम ने अधर्म में लगाया। ऐसा दान निष्फल तो गया ही अधर्म को बढ़ाने का पाप भी लगा।

अतः जो ब्राह्मण धार्मिक कार्यो में प्रवृत है उसके प्रति श्रद्धा न होने पर भी दान देना चाहिए। अतः विद्यारण्य स्वामी ओर राघवेन्द्र यति ने जो अर्थ किया है वही ठीक है। विद्वान अतिथि का सत्कार श्रद्धा से, अश्रद्धा से, प्रसन्नता से, अन्यों की लज्जा से, भय से और प्रेम भाव से, जैसी भी सूरत हो प्रत्येक अवस्था में सत्कार व दान करना चाहिए।

स्वामी सोम्यानन्द सरस्वती
श्री सर्वदानन्द गुरुकुल
संस्कृत महाविद्यालय,
साधु आश्रम,(अलीगढ़)

****

कहाँ गए प्यारे नेता जी, धूमिल अभी कहानी है

नाम अमर कर गए जगत् में नेता वीर सुभाष महान।
युगनायक ने, सकल जगत् में, भारत की ऊंची की शान।।
माता प्रभावती विदूषी, ने जो गोद खिलाया था।
देश धर्म पर मिट जाने का, उत्तम पाठ पढ़ाया था।।
श्री जान की नाथ पिता ने, भारी लाड लडाया था।
सच्चाई का पालन करना, वैदिक ज्ञान सिखाया था।।
धर्म–कर्म का, पुण्य–दान का, प्यारे नेता को था ज्ञान।
युगनायक ने सकल जगत् में, भारत की ऊंची की शान।।
बैरिस्टरी पास करके वे, जब भारत वापिस आए।
दयनीय दशा देख भारत की, नेता मन में घबराए।।
स्वामी श्रद्धानन्द, तिलक ने, वीर पुरुष वे समझाए।
स्वतन्त्रता की लड़ो लड़ाई, हानि–लाभ सब दर्शाए।।
नेताओं की शिक्षाएं सुन, करके हर्षाए बलवान।
युगनायक ने सकल जगत् में, भारत की ऊंची की शान।।
आज़ादी की लड़ी लड़ाई, किए विरोधी सब निस्तेज।
सुभाष चन्द्र का जोश देखकर, कांप उठे पापी अंग्रेज़।।
होकर के भयभीत उन्हें, अंग्रेज़ों ने पहुंचाया जेल।
नेता जी ने जेल काटना, समझा था बच्चों का खेल।।
संकट में ही वीर पुरुष की, मित्रो! होती पहचान।
युगनायक ने सकल जगत् में, भारत की ऊंची की शान।।
वेश बदलकर के नेता जी, जेल से निकल गए।
पहुंच गए बर्लिन में योद्धा, बन हिटलर के मित्र नए।।
आज़ाद हिन्द बनाई सेना, ऐसा भद्भुत काम किया।
मुझे खून दो, आज़ादी लो, युवकों सन्देश दिया।।
बर्लिन से उनका भाषण सुन, सारी दुनियां थी हैरान।
युगनायक ने सकल जगत् में, भारत की ऊंची की शान।।
"दिल्ली चलो" लगाया नारा, किया घोर संग्राम सुनों।
नेता वीर सुभाष चन्द्र का, जग में चमका नाम सुनों।।
गांधी और जवाहर दोनों उनका देते साथ अगर।
भारत मां के वीर पुत्र वे, निश्चित लेते जीत समर।।
बोरी, बिस्तर बांध भाग जाते, सब गोरे बेईमान।
युगनायक ने सकल जगत् में, भारत की ऊंची की शान।।
कहां गए प्यारे नेता जी, धूमिल अभी कहानी है।
हमने उनकी वीर कथा, आज़ाद फौज से जानी है।।
है भगवान दया करके, भारतियों की विनती सुन लो।
भारत के नेताओं को, दो सुमति दयानिधि दया करो।।
"नन्दलाल" नेता जी जैसे, सब दें जोशीले व्याख्यान।
युगनायक ने सकल जगत् में, भारत की ऊंची की शान।।

पं. नन्दलाल निर्भय
आर्य सदन, बहीन जनपद, पलवल (हरियाणा)
चलभाष क्रमांक–09813845774

आलोचना

अशिष्टता का परिचायक है

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सम्पूर्ण विश्व को गायत्री मंत्र की भेंट दी इस भेंट में कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि आप आलोचना करो।

सम्पूर्ण वातावरण में अनेक परिन्दे निवास करते हैं कोयल जैसा पक्षी अपनी सुरीली आवाज से सम्पूर्ण विश्व को लुभाता है वहीं चील, कौवे से सभी घृणा करते हैं।

समस्त आर्य विद्वानों से नम्र निवेदन है कि आलोचना शब्द का प्रयोग कदापि न करें।

आलोचना अशिष्टता का परिचायक है। आर्य शब्द सहिष्णुता का प्रतीक है।

कृष्ण मोहन गोयल
113 बाजार कोट अमरोहा

****

हिन्दू तो अपने देश में भी घट रहा है!

हिन्दू की घटती जा रही संख्या चेतावनी दे रही है कि इस ओर पूरा ध्यान दिया जाए अन्यथा पछताना पड़ेगा। उत्तर प्रदेश के निम्न नौ जिलों में सक्रियता से कार्य करने की आवश्यकता है:–

क्रम सं.	जिला	हिन्दू का प्रतिशत 2011 में
1	रामपुर	45
2	मुरादाबाद	48
3	सम्भल	48
4	बिजनौर	56
5	सहारनपुर	57
6	अमरोहा	58
7	मुजफ्फरनगर	58
8	बरेली	63
9	मेरठ	64

अत: आश्यकता है कि चीन जैसा सख्त कानून यहां भी लागू किया जाए अन्यथा गरीबी–बेरोजगारी दूर नहीं नहीं होगी। देश का हिन्दू आत्म हत्या कर रहा है क्योंकि मांगों–समस्यायों की सभी दल उपेक्षा कर रहे हैं। और उसे जाति–उपजाति में बांट कर अपना स्वार्थ पूरा कर रहे हैं।

इन्द्र देव गुलारी
09858778443

****

☞ पृष्ठ 09 का शेष

अभिनिवेश

थे। एक मां अपने शिशु के शव को छाती से चिपकाए, रोती–बिलखती सभा में पहुँच गई। बुद्ध के चरणों में नतमस्तक होकर बोली–आप यशस्वी पुण्यात्मा, भगवान हैं। मेरे शिशु को जीवित कर दीजिए। मेरी यही एक मात्र सन्तान है। बुद्ध समझ गए कि किसी भी प्रकार के ज्ञान का उपदेश सुनने लायक उसका मन नहीं है। बुद्ध ने उससे कहा–मां, निराश मत हो। मैं तेरा पुत्र जीवित कर दूंगा। मां का रुदन रुक गया। आशा ने आंसू सुखा दिए। बुद्ध ने आगे कहा– मेरी एक ही शर्त है। तू यह कटोरा लेकर घर–गांव जा और उस घर से यह कटोरा तेल लेकर आ, जिस घर में किसी की मृत्यु न हुई हो। वह मां कटोरा लिए घर–घर पहुँची। एक घर भी ऐसा नहीं मिला कि जिसमें किसी की मृत्यु न हुई हो। भूखी–प्यासी, बेकल–बेसुध, संध्याकाल बुद्ध के पास पहुंची। बुद्ध ने पूछा–तेल ले आई। मां ने निराशा में हाथ फैला दिए। कहा एक भी घर ऐसा नहीं मिला जहाँ किसी की मृत्यु न हुई हो। बुद्ध ने अब उपदेश दिया–जन्म सत्य है और मृत्यु अंतिम सत्य। मां को ठंडक मिली। ज्ञान प्राप्त हुआ।

एक माह भीषण पीड़ा सहकर भी, मृत्यु से संघर्ष करते हुए, महर्षि दयानन्द के मुख से ऐसा कोई शब्द नहीं निकला जो समीपस्थ उपस्थित लोगों को यह एहसास दिला सके कि अभिनिवेश क्लेश महर्षि को स्पर्श भी कर सका हो। विपरीत इसके वह समस्त आगन्तुकों को सिरहाने की ओर, पीछे आने का संकेत कर प्रभु–उपासना में निमग्न हो जाते हैं। अंतिम श्वास छोड़ने से पूर्व कहते हैं–ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो। तूने अच्छी लीला की। किस दमकारी से ऋषि आत्मा परमात्मा को उलाहना देती है।

महर्षि दयानन्द के अभिनिवेश क्लेश से मुक्त होने का कारण ढूंढना चाहिए। ईश्वर के स्वरूप का निश्चय हो जाने पर कोई अन्यथा विचार उनके मन में कभी नहीं आया। निराकार ईश्वर पर विश्वास का आधार उसकी सृष्टि रचना ही था जिसका उन्होंने गहनतम एवं अत्यन्त सूक्ष्मता से निरीक्षण परीक्षण कर लिया था। इस समस्त सृष्टि की रचना ईश्वर ने पंचभूतों से की है। उस रचना का क्रम उत्पत्ति, संवर्धन और अन्त में पंचभूतों में लय–विलीन हो जाना है। जब सृष्टि के समस्त चेतन जगत की यही गति है, तो मानव इस गति से कैसे पृथक रह सकता है, बच सकता है। महर्षि के लिये यह ज्ञान बौद्धिक कसरत नहीं था बल्कि आत्मसात किया हुआ सर्वोच्च सत्ता का अनिवार्य सत्य था। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण उस समय भी मिलता है जब महर्षि ने ईसाईमत की बखिया उधेड़ने में अत्यन्त कठोर शब्दों का प्रयोग किया था। कहा था–ये लोग ईसामसीह को कुंवारी कन्या का पुत्र मानते हैं और लज्जा भी नहीं करते। सभा में अनेक उच्च पदस्थ अंग्रेज़ अधिकारी उपस्थित थे। महर्षि को अप्रत्यक्ष चेतावनी देते हुए, कहलवाया गया कि अंग्रेज सभ्य जाति है इसलिये कठोर आलोचना सह सकते हैं अन्य मत वाले नहीं सहेंगे। उनके जीवन के लिये आसन्न खतरा हो सकता है।

महर्षि ने दूसरे दिन भाषण सिंह गर्जना से ही किया। लोग कहते हैं कि सत्यभाषण न करूं। कलक्टर नाराज हो जावेगा। गवर्नर पीड़ा देगा। इस शरीर का क्या? कोई भी इसे समाप्त कर सकता है। पर वह व्यक्ति बताओ जो मेरी आत्मा का हनन कर सके। अभिनिवेश क्लेश से पीड़ित कोई व्यक्ति यह सिंह गर्जना कर सकता है? नहीं, कदापि नहीं। मन महर्षि की ओर चुम्बकीय शक्ति से जुड़ा है इसलिये उदाहरण भी उनके ही स्मरण हो आते हैं।

विश्व के अन्य राष्ट्रों में, सभ्यताओं में मृत्यु पर चिन्तन हुआ है कि नहीं, मुझे अधिक ज्ञात नहीं है परन्तु भारत के ऋषि–मुनियों ने इस पर गम्भीर चिन्तन किया है। भारतीय मनीषा ने लाखों वर्ष के आध्यात्मिक जीवन के कारण इस दुःख को आत्मसात कर लिया है। सामान्य जन तक यह जानता है, मानता है कि यह दुःख–

देह धरे को दण्ड है,
सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से,
मूरख भुगते रोय।।
नौ द्वारे का पींजरा, तामें पंछी मौन।
रहे अचम्भा जानिए,
गए अचम्भा कौन।।
हानि–लाभ, जीवन–मरण,
यश–अपयश विधि हाथ
एक पक्ष यह भी है–
लाई हयात आए,
कज़ा ले चली चले।
अपनी खुशी न आए,
न अपनी खुशी चले।।

ऋषियों ने हमें जीने का ढंग सिखाया है और मरने का भी। ईश्वर ने सृष्टि के समस्त सुख मानव उपयोग के लिये दिए हैं। साथ ही यह भी कहा– **तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा–त्याग** भाव से भोगो–तुम्हारा इन पर जीवनकाल में ही अधिकार है। मैं तुम्हें इनमें से कुछ भी नहीं ले जाने दूंगा। मृत्युंजय मंत्र में मृत्यु की भयानकता नहीं बताई गई है। सुकर्म करते पूर्ण आयु–सौ वर्ष भोगो। पकी हुई आयु के अनुभव नई पीढ़ी को देते जाओ। इस प्रकार जीवन जीते हुए जाओगे तो पके हुए खरबूजे की तरह सुगन्ध फैलाते हुए जाओगे। जीवन का पूर्ण सुख मिलेगा और अभिनिवेश क्लेश भी न होगा। ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना को सफल करोगे।

22 नगर निगम क्वार्टर्स,
जीवाजीगंज, लश्कर,
ग्वालियर–474001 (म.प्र.)
दूरभाष–0751–2425931

****

इतना ही बहुत है

रिश्ते बनते रहें,
इतना ही बहुत है।
हम हंसते रहें,
इतना ही बहुत है।।
हर कोई हर वक्त,
साथ नहीं रह सकता।
याद एक दूसरे को करते रहें,
इतना ही बहुत है।।

अजय सहगल,
प्रस्तोता

स्वामी श्रद्धानंद बलिदान दिवस पर 11 कुण्डीय गायत्री महायज्ञ सम्पन्न

आध्यात्म पथ (पंजी.) मासिक पत्रिका द्वारा स्वामी श्रद्धानंद बलिदान दिवस के अवसर पर प्रतिष्ठित वैदिक विद्वान आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी के ब्रह्मत्व में 11 कुण्डीय एवं भक्ति सत्संग का भव्य आयोजन, आर्य समाज महाबीर नगर नई दिल्ली में किया गया। यज्ञ के ब्रह्मा आचार्य चन्द्रशेखर जी ने विशाल जनसमूह को संबोधित करते हुए कहा कि महायज्ञों और यज्ञों के अनुष्ठान से जीवन को ब्रह्म प्राप्ति के योग्य बनाया जाता है। यज्ञ आरोग्यप्रद है, सुखकारक, कामधुक् तथा समृद्धि कारक है। यज्ञ से समूचे विश्व का कल्याण होता है इस समारोह के मुख्य अतिथि श्री ओ.पी. बब्बर (पूर्व विधायक) सुश्री रितु बोहरा (अध्यक्ष, पश्चिमी क्षेत्र एवं निगम पार्षद) थे।

इस समारोह में गुरुकुल पूठ के आचार्य स्वामी धर्मेश्वरानन्द सरस्वती जी को 'अध्यात्म मार्तण्ड' सम्मन से विभूषित करते हुए प्रशस्ति पत्र प्रतीक चिन्ह, सम्मान राशि एवं शाल भेंट की। इस कार्यक्रम के अध्यक्ष शिक्षा समिति के चेयरमेन एवं लोकप्रिय निगम पार्षद श्री यशपाल आर्य को 'आध्यात्म रत्न' एवं मारीशस में सफल वैदिक धर्म प्रचार कर स्वदेश लौटने पर आयार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी का सार्वजनिक अभिनन्दन दिया गया। सभी वक्ताओं ने स्वामी श्रद्धानन्द के अभूतपूर्व त्याग बलिदान एवं साहित्यिक योगदान को याद किया तथा उनके पद चिन्हों पर चलने तथा अध्यात्म पथ पर आग्र बढ़ने की प्रेरणा दी। स्वामी धर्मेश्वरानन्द जी के सारगर्भित प्रवचन आचार्य चन्द्रशेखर जी के ब्रह्मत्व में विधि

विधान पूर्वक सम्पन्न यज्ञ एवं श्री नरेन्द्र आर्य 'सुमन' जी के भजनों ने सबका मन मोह लिया।

इस समारोह का मुख्य आकर्षण था 101 लोगों का सामूहिक यज्ञोपवीत संस्कार, 11 कुण्डयीय यज्ञ में 55 परिवार के लोगों ने बैठकर यज्ञ किया। योगासन प्राणायाम का प्रदर्शन, वैदिक साहित्य का विमोचन एवं निशुल्क वितरण किया गया।

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11 \6066\2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103 \2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 27-28 \01 \2016
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39\57

डी.ए.वी. खड़िया (उ.प्र.) ने चलाया स्वच्छता कार्यक्रम

डी.ए.वी. सीनियर सेकेन्ड्री पब्लिक स्कूल खड़िया परियोजना के सीनियर ग्रुप के छात्र–छात्राओं ने स्वच्छता अभियान के संदर्भ में कालोनी स्थित बुद्ध पार्क एवं अम्बेडकर पार्क में निर्मित महात्मा गौतम बुद्ध एवं डॉ. भीमराव अम्बेडकर की प्रतिमाओं तथा संबधित स्थान की साफ–सफाई का कार्यक्रम सम्पन्न किया। इस संदर्भ में महात्मा गौतम बुद्ध एवं अम्बेडकर कार्यकारिणी के सदस्य योगेश भारती, बेचन राम तथा वीरेन्द्र राम उपस्थित रहे। योगेश भारती ने गौतम बुद्ध एवं डॉ. भीम राव अम्बेडकर के जीवन–चरित् पर प्रकाश डालते हुए समाज के प्रति उनके समर्पण की याद दिलाई।

डी.ए.वी. प्रबंधकर्त्री समिति के अध्यक्ष माननीय श्री पूनम सूरी महोदय जी द्वारा अपने दिये गये संदेश में 'मन्त्रों की असीम शक्ति' का ध्यान कराते हुए लोगों में प्रेम, स्नेह, दया, ममता के भाव उत्पन्न करने हेतु तथा अश्पृश्यता, वर्गभेद, छुआछूत एवं आतंकवाद जैसी गतिविधियों को छोड़ने हेतु गायत्री मंत्र एवं "ओ३म् विश्वानि देव'' मंत्र का पाठ किया गया।

बच्चों ने देश में होने वाली आतंकवादी घटनाओं पर आतंकवादियों के ह्रदय परिवर्तन की भी प्रार्थना की। पठानकोट में हुए आंतकी हमले पर वीर जवानों को शत्–शत् नमन करते हुए बच्चों ने सर्व धर्म समन्वय की कामना करते हुए आगामी दिनों में अब इस तरह घटनाएँ न हों ऐसी प्रार्थना ईश्वर से की।

विद्यालय के प्राचार्य श्री अशोक माथुर जी ने स्वच्छ भारत मिशन पर प्रकाश डालते हुए बच्चों को स्वच्छता के प्रति जागरूक किया।

संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार में प्रयासरत डी. ए. वी. पटियाला

"संस्कृत संस्कारों की भाषा है। हमारी संस्कृति की गौरव है, संस्कृत भाषा। युवा पीढी को भारतीय संस्कृति से जोड़े रखने के लिए उन्हें संस्कृत भाषा का ज्ञान देना अति आवश्यक है।" यह कहना था हिन्दी के शिरोमणि साहित्यकार डॉ. राजपाल का जो डी ए वी पब्लिक स्कूल भूपिन्द्रा रोड़ पटियाला में संस्कृत भाषा के प्रचार–प्रसार के उद्देश्य से राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान द्वारा प्रामाणित 'अनौपचारिक संस्कृत शिक्षण केन्द्र' के उद्घाटन पर बोल रहे थे। समारोह का प्रारम्भ मुख्य अतिथि व केन्द्र के प्रान्तीय संयोजक डॉ. इन्द्रमोहन सिंह (पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, पंजाबी

विश्वविद्यालय, पटियाला) ने 'गायत्री' व ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना' मन्त्रोच्चारण के साथ दीप प्रज्ज्वलित करके किया।

इस अवसर पर डॉ. इन्द्रमोहन ने बच्चों को संस्कृत भाषा की पवित्रता को बताते हुए उन्हें इसके पठन–पाठन के लिए प्रेरित किया। इस 'शिक्षण केन्द्र' में 12 साल से ऊपर की आयु का कोई भी व्यक्ति निःशुल्क लाभ प्राप्त कर सकता है।

स्कूल की इकाई 'आर्य युवा समाज' सेवा के साथ–साथ वैदिक संस्कृति व संस्कृत भाषा के प्रचार–प्रसार के लिए अथक कार्य कर रही है। प्राचार्य एस.आर.प्रभाकर ने मुख्य अतिथि व अन्य अतिथिगण का स्वागत करके अपने सम्बोधन में कहा, "संस्कृत भाषा भारतीय संस्कृति की आत्मा है। विद्यार्थियों को चाहिए कि वे संस्कृत भाषा के प्रति अपनी रूचि प्रकट करें। "संस्कृत शिक्षण–केन्द्र को चलाने वाली अध्यापिका सोनम ने इस योजना के अन्तर्गत दी जाने वाली सेवाओं की जानकारी दी प्राचार्य प्रभाकर ने आये हुए मेहमानों का धन्यवाद किया।

कोसरंगी (छ. ग.) में लगाया गया राज्यस्तरीय युवा चेतना शिविर

आर्षज्योति गुरुकुल आश्रम कोसरंगी महासमुन्द में राज्यस्तरीय युवा चेतना शिविर को आयोजन सम्पत्र हुआ। जिसमें प्रदेश के अनेक विद्यालयों के छात्रों ने योगासन, जूडो, कराटे के साथ–साथ वैदिक धर्म की शिक्षा प्राप्त की।

शिविरार्थियों को बौद्धिक शिक्षा प्रदान करने के लिये संस्कृत विद्यामण्डलम् के अध्यक्ष डा. गणेश कौशिक, सचिव सुरेश शर्मा, अपेक्स बैंक के अध्यक्ष व भारतीय जनता पार्टी के नेता अशोक बजाज, मुख्यमन्त्री छ.ग. शासन के निजी सहालकार डां. अशोक चतुर्वेदी, रायपुर एम्स के डीन डां. सूर्यप्रकाश धनेरिया, गुजरात से पधारे स्वामी शान्तानन्द जी महाराज आदि अनेक गणमान्य विद्व नों एवं स्थानीय नेतागण उपस्थित रहे।

इस पंचदिवसीय शिविर में युवाओं को शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक स्तर पर विशेष प्रशिक्षण दिया गया। कपिलदेव शास्त्री, मुकेश शास्त्री, दुःखनाशन आर्य अनेक व्यायाम शिक्षकों ने कुम्फ़ू, कराटे, योगासन आदि के प्रशिक्षण द्वारा आत्मरक्षा के गुर सिखाये। इस शिविर के साथ–साथ अथर्ववेद पारायण महायज्ञ सम्पन्न किया गया। इस सम्पूर्ण आयोजन के प्रेरणास्रोत स्वामी धर्मानन्द सरस्वती व गुरुकुल के आचार्य कोमल कुमार ने अपने सहयोगियों के साथ इस आयोजन को सुव्यवस्थित रूप से सम्पन्न किया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**